हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ९३ वाँ ग्रन्थ

मौक्तिक माल

(गद्य-गीत)

लेखिका

कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग-बम्बई

पहली बार

अगस्त, १९३७

मू० १।)

प्रिंटर—

रघुनाथ दिपाजी देसाई,

न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस

६ केलेवाडी, गिरगांव बम्बई नं० ४

मौक्तिक माल

भूमिका

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति', श्रुतिकी तरह यह भी अमेल है। टेढ़े-मेढ़े ऊटपटाँग भाव पद्यके चमत्कारी पर्देमें भले ही लुके रहें, परन्तु, गद्यके मैदानमें उतरते ही बेतुकी पछाड़ खाते हैं। इसीलिए, गद्य-गीत सरल नहीं होते और उनकी सृष्टि सब-किसीका काम नहीं है। तत्त्व न हुआ तो यह गद्यका चेतक चेतता ही नहीं, उलटे दुलत्ती लगाता है। उसे कस कर जो द्वैत और अद्वैतकी समस्या हल करना चाहते हैं, सांख्य और मीमांसाके कुलाबे मिलाना चाहते हैं, वे सीसौदियोंके प्रतापकी जगह कछवाहोंके मानका ही दम भरते हैं। गद्य-गीत क्या हैं और क्या न होने चाहिएँ, यह वही जानते हैं जो आप तन्मय हैं और गद्यको तन्मय कर सकते हैं। न वह पत्र हैं न निबन्ध, न कहानियाँ न कथा-काव्य,—यह तो प्रत्यक्ष है। वे पद्यमें पलटे नहीं जा सकते। मदारीकी गोलियाँ नहीं हैं,—इधर रख लीं या उधर। गीत हैं। सरस्वतीका दिव्य वेग जिस तरह पद्यको अक्षर अक्षर आप ही आप अपने अनुरूप बना लेता है, उसी तरह गद्यको भी उन्मत्त कर देता है,—यह संस्कृत साहित्यका सिद्धान्त है।

यह मोतियोंकी माला प्रेमके पंखोंपर इस पारसे उस पारको उपहार है। मोतियोंका क्या कहना? 'किं किं न तेन विहितं बत मौक्तिकेन?'

यह गद्य सजीव है, सबल है, सुन्दर है। उसपर आत्माकी छाप है, दिव्यकी दाप है। वह भावोंमें गोते लगा रहा है, तारोंसे भाँति भाँतिके स्वर निकाल रहा है। कहीं हिन्दी-उर्दू गले मिलतीं हैं, कहीं मुल्ला और पंडित प्रेम पढ़ते हैं। उसमें बिधना रूप बदलता है, मोहन मोहन ही ठहरते

हैं। शैलीमें आँसू हैं, मुसकान है, आँच है। 'संध्या होते ही मैं सरोवर-पर जा बैठी, बिना सावनके ही बदरिया झुक आई' यह गद्यकी सुरीली बाँसुरी है। 'मन-मृग काहे डोलत फिरे' यह पद्यकी सरहदपर छापा है। 'चाँदके प्यालेमें अंगूरका आसव' एक ओर, 'पृथ्वीकी अनन्त सुषमा और आह्लाद ही मदिरा होंगी' दूसरी ओर, 'तरल तारिकाकान्त किरीटेन्दु और तेजोमय तमारि' इधर 'और फिर, मैं ढूँढ़े भी न मिलूँगी' उधर-'यह मौलाहीकी करतूत है।' शब्दोंके लाड़ले कहीं कमरोंमें सँवारे जाते हैं, कहीं आप ही आँगनमें छगन मगन हैं। छोटे छोटे गीत बड़े बड़ोंसे बाजी मार ले गये हैं। राजहंस कहीं उड़ान ले रहे हैं, कहीं छीर ही छान रहे हैं। यहाँ ईरानी वारुणी है तो वहाँ भारतीय पंचामृत या गोलोकका गंगाजल।

ग्रन्थ सफलताके पथपर है। कुमारी दिनेशनन्दिनीजी चोरड़्या-घरानेकी एक आनन्दिनी मणि हैं। उनकी आत्माका प्रकाश अनन्त काल तक रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। मानवी जीवन कितना गूढ़ है, कठोर है, जटिल है,—विचित्र है,—संयोग और वियोग, जन्म और मृत्यु, ईश्वर और जीव, क्या क्या कला खेलते और खिलाते हैं, यह कुछ जानना हो तो यह ग्रन्थ अपनाना चाहिए। इसमें शान्ति है, सत्य है, सुधा है,—यह मेरा निजी अनुभव है।

श्रीप्रयागराज

शिवाधार पांडेय

हिज़ हाइनेस श्रीसवाई महेन्द्र महाराज

ओड़छा-नरेश

सर **वीरसिंहजू देव** के० सी०एस०आई०

और

श्रीमती महारानी-साहबाके

कर-कमलोंमें

सादर समर्पित

जैसे ग्रीष्मकी सूखी धरणी वर्षाकी प्रतीक्षामें व्याकुल हो जाती है,

मयूर आषाढ़के प्रथम दिवस ही नीलमेघकी प्रतीक्षामें सुन्दर रव कर कर विह्वल हो जाता है,

प्रावृट्के आरम्भमें ही पपीहा 'पीऊ कहाँ, पीऊ कहाँ' की रट लगा स्वातिकी अमृत-बूँदोंके लिए निर्निमेष दृष्टिसे आतुर रहता है,

चकोरी चाँदपर निछावर होनेके लिये बौरा जाती है, और प्रोषित-पतिका, रातकी उनींदी घड़ियोंमें घड़ी घड़ी चौंककर अपने प्रीतमके प्रत्यागमनकी मंजुल प्रत्याशासे द्वारकी ओर झाँकती है,—

वैसे ही विश्व आज मेरे गीत सुननेके लिये व्यग्र है !

मेरे हृदयके पावन रक्तसे पले गद्य-गीतो ! माताकी गोद, और बालापनका आशियाना छोड़कर साहित्यके आनंदमय अनंत गगनमें, अपने स्वर्णिम पंख फड़-फड़ा, हुलस हुलस, ऊँचे उड़ो,

और अपनी सङ्गीत-लहरीसे अपने प्रेमियोंको मंत्र-मुग्ध करो !

सहृदय संसार तुम्हारा उसी भुवन-मोहिनी मुसक्यानसे स्वागत करे जिसे मैं अपने प्रेमीके अधर-सम्पुटपर देखनेके लिये सदा लालायित रहती हूँ ! !

मैं तो चाकर प्रेमकी;

प्रेम, तू ही विश्वमें महान् सत्य, पूर्ण सौन्दर्य और चिरन्तन प्रकाश है;

तेरी चरण-पादुकाने ही इस पृथ्वीको पवित्र तीर्थस्थान बनाया है जिसके रज-कणका तिलक अपने भालपर लगानेके लिये देवता भी उत्सुक रहते हैं;

कवियोंने अनादि कालसे तेरा ही गुण-गान किया है, तू ही कविताका आदि स्रोत है;

शहीदोंने तेरी वेदीपर जीवन न्यौछावर कर मृत्युको मुक्तिका राजमार्ग बना दिया है;

चिरजीवन और चिरमृत्युका मधुर मिलन तुझमें ही होता है;—तू ही मृत्यु और मृत्युञ्जय है;

मृत्यु, तुझमें नवीन जीवन अन्तर्हित है, मैं तेरा स्वागत करती हूँ;

जीवन,—रहस्यमय जीवन,—वह प्रदेश जहाँ स्वर्ग और भूतल क्षणभरके लिये मिलते हैं, मैं तेरी ऐश्वर्य-भरी निधिसे मेरे आराध्यके पदाम्बुजोंपर चढ़ानेके लिये यह अनमोल भेट लाई हूँ।

मैं तो चाकर प्रेमकी !

२

ऐ बुत, चाहे ठुकरा, चाहे प्यार कर;

तेरी परस्तिश मेरा मज़हब है;

तेरा ज़िक्र बज़्मे शोअरामें करना मेरा शेवा है,

तेरा हुस्न मेरे शिवालेका उजियाला है;

तू मेरे जीवनमें तूर पर्वतका प्रकाश है;

तेरी गुलामीकी सनद मेरे सौभाग्यका अमर पट्टा है;

तेरे नक्शे क़दमकी ज़ियारतें मेरे काशी और वृन्दावन,—मक्का और मदीना, हैं;

तेरे गुलशनको अपने ख़ूने जिगरसे सींचूँ,—यही मेरी एक आरज़ू है और—

तेरी स्मृतिमें तमन्नाए वफा लेकर हँसते हँसते मरना ही मेरे जीवनका महान् गौरव-चिह्न है;

ऐ बुत, जी चाहे प्यार कर, जी चाहे ठुकरा !

३

तुम सौन्दर्य हो, और मैं तुम्हारी सुनहरी अलकोंसे झड़नेवाली सुगंधित धूरि हूँ जिसे देख पराग लज्जासे पीला पड़ जाता है !

जब केवड़े और गुलाबके निर्मल जलसे स्नान कर, गोपीचन्दनका तिलक लगा, पूजा-गृहमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने आते हो, मैं सरस्वतीका साकार रूप बनकर तुम्हारी स्तुतिमें समा जाती हूँ !

पुरातन पुजारियोंका ज्वालामुखी फूट पड़ता है !—जब सुरा-सुन्दरीका अधरामृत पान कर राजराजेश्वरकी तरह झूमते हुए इन मणि-मुक्ता-जटित महलोंमें प्रवेश करते हो, तब राजरानी बनकर तुम्हारे आह्लादित यौवनकी साध बन जाती हूँ !!

यौवन-गर्वितायें तिलमिला उठती हैं ! परन्तु, जब तुम प्रियतम बनकर कविकी कल्पनासे परमेश्वर बन जाते हो, तब

मैं प्यासे, थकित, कान्तिहीन नयनोंसे चिरभिखारिनकी तरह तुम्हारे उपासकोंसे दर्शनकी दयनीय याचना करती हूँ !!!

दुरङ्गी दुनिया व्यङ्गका कठोर ठहाका मारकर किलक उठती है !

इसीलिये कहती हूँ,—तुम सौन्दर्य हो और मैं केवल उसकी धूरि ! !

४

क्या संसार तेरे त्रैलोक्य-ललामभूत सौन्दर्य और तेरे प्रति मेरे अगाध अनंत प्रेमकी पवित्र स्मृतिको यों ही बिसार देगा ?

तू इंद्रके नंदन-काननमें प्रवाहित होनेवाली मंदाकिनीके हृत्-पटलपर विकसित होनेवाला नील कमल और,—मैं उसकी मलयानिल-ताड़ित तरल छाया और प्रकाशकी भग्न किरण !

५

भूले पथिक, पियाके घरकी गैल पूछते हो ?

मनोवृत्तियोंके घने कंटकाकीर्ण जङ्गलमें फूँक फूँक कर पाँव रखते हुए अपनेको प्रलोभनोंके नर-रक्त-लोलुप हिंसक पशुओंसे बचाना;

प्रेमकी डोंगीपर बैठ सात समंदर पार मरकत द्वीपमें पहुँचना जहाँ अनिंद्य सुन्दरी रानी मायावती राज्य करती है। तुम उस फरफन्दीके कपट-जालमें न फँसना, नहीं तो वह छलिया तुम्हें अपनी बलखाई जुल्फोंमें मैणकी मक्खी बनाकर कालान्तरतक कैद कर देगी;

शीलकी ढाल पहन, सूरमा, सत्यके खड्गसे उसके जादूके क़िलेको ढाहकर दूर, और दूर, चले जाना;

मार्गमें अविद्याकी घोर तिमिराच्छादित दुर्गम घाटी पड़ेगी जिसमें विषय-विषधरोंका वास है, किन्तु हृदयमें अभय धारण कर ज्ञानका दीपक जला उसे पार करना; फिर,

दारुण विरह वेदनाका अंगार-बिछा ऊबड़-खाबड़ गगन-चुम्बी पहाड़ विश्वासके बलपर लाँघना।

तब तुम्हें पियाके अभ्र-शृंग महलका गुम्बज कोटि सूर्योंकी प्रभाको लजानेवाला अमल-धवल-अगमके देशमें दिखेगा;

द्वारपर जा तुम अलख जगाना तो प्राण-पियारा स्वयं ही तुम्हारे स्वागतको दौड़ेगा;

और उसके स्पर्श-मात्रसे तुम्हारी यात्राके सब कष्ट काफ़ूर हो जायेंगे,

भव-भवकी बाधा मिटेगी !

भूले पथिक, पियाके घरकी गैल पूछते हो ?

६

शाहज़ादीकी मज़ारपर, हाय ! अब
पृथ्वी सिर्फ कोमल दूर्वादल और पुष्प चढ़ाती है;
बयार सुगंधित द्रव्योंकी धूप भेंट करती है;
चाँद और तारे ज्योतिके चिराग़ जलाते हैं;
और बेचारा आसमान शबनमके आँसू रोता है !

७

‘ दिनेश कौन थी ? ’

—संसारके पुराने पड़नेपर कोई पूँछ बैठे !

विधनाके विधान ठीक उतरेंगे,

शताब्दियाँ सौम्य सौन्दर्यसे इठलाती हुई आवेंगीं और निकल जायेंगीं !

एवम्,

अनंत यौवन, मुक्त प्रौढ़ और जीर्ण जरा झेंप कर चली जायगी;

परन्तु,

दिव्य प्रेमकी परिमल-किरण संसारकी छिन्न थातीको सुनहले रङ्गसे रागमयी करेगी !

तब,

संसारके पुराने पड़नेपर कोई पूछ बैठे—

‘ दिनेश कौन थी ? ’

८

मैं तुमसे प्यार कैसे करूँ ?

मैं फूलों-बिछे मार्गपर गिन-गिनकर तालसे कदम रखने-वाली ऐश्वर्य-रानी हूँ, और तुम,—मेरे दिव्य प्रेमीकी स्वर्णिम पादुकाके नीचे पिसकर धूल बन जानेवाले तुच्छ रज-कण !

मैं रत्नाकरकी विशाल शय्यापर सोई हुई उष्ण प्रलयके सामयिक तूफ़ानको रोकनेवाली महान् शक्ति हूँ, और तुम,—

मेरे कदापि न पिघलनेवाले हिमाचल-स्वरूप उपास्यसे टकरानेवाले क्षुद्र बुलबुले ! !

भला बताओ तो,

मैं तुमसे प्यार कैसे करूँ ?

१

मेरे साकी,

घड़ियोंपर घड़ियाँ बीती जा रही हैं, और मैं निर्निमेष नेत्रोंसे द्वारकी ओर देखती रहती हूँ !

दीवालपर छाया-चित्र बनते और बिगड़ते जाते हैं, और

कूचेमें पथिकोंकी पद-ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं।

हृदयकी धड़कनकी भाँति आशा और निराशा मेरे अंतस्तलमें अपने पंख फड़फड़ाती है;

देख तो,

इतने मनुष्य घर लौट रहे हैं, और

केवल तेरा ही अब तक पता नहीं ! !

१०

तेरे प्रेमकी अन्तर्ज्वालाने मुझे जला जला कर राख कर दिया जिसे वायु इधर-उधर उड़ाती है;

तेरे लावण्यकी तेज तलवारने चमक चमक कर मेरे दिलके सौ सौ टुकड़े कर दिये, जिन्हें तेरे बाज़ और शिकरे बड़े चावसे चुगते हैं;

किन्तु, मेरी अजर आत्माका प्रकाश तुझमें ऐसा समा गया जैसे फूलमें सुगन्धि; अथवा,

वीणाके तारोंमें लय !

रात्रिके सूने मन्दिरमें तारक प्रकाश और कोमल पुष्प मेरे अथाह प्रेमको पावन करें !

११

पंछी, तू कौन देशसे आयो ?

मैं अगमका राजहंस हूँ;

इस बालुका-मय प्रदेशमें उड़ते उड़ते मेरे पंख झुलस गये हैं;

गम-कण चुग नयन-नीर पीते पीते मेरा पीन कलेवर क्षीण हो गया है;

चकित मुग्धे, तुमने तो इस छोरहीन मरुभूमिका सब रस खजूरकी तरह अपने हृदयमें ही संचित कर रखा है;

मेरे आतिथ्य और अभ्यर्थनाके लिये दो बूँद न दोगी ? मैं अघा जाऊँगा;

आजका रैन-बसेरा तुम्हारे ही मन-मानसमें करने दो;

भोर होते ही पश्चिमकी राह लूँगा जो रात और दिनके परे है,

और जहाँ प्रेम-घन उमड़-घुमड़कर अखण्ड आनंदकी वर्षा करते हैं !

पंछी, तू कौन देशसे आयो ?

१२

मैंने वेद-वेदान्त, पोथी-पुराण, श्रुति और शास्त्र छान डाले; प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्मकाण्ड और संन्यास, कुफ्र और इस्लामके भिन्न भिन्न मार्गोंका अवलम्बन कर मतमतान्तरके प्रदेशोंका भी ज़र्रा ज़र्रा शोध लिया; स्वर्ग और नरक, भूतल और तलातलके रहस्योद्घाटनमें घण्टों गुज़ार दिये; साधु और सूफियों, पीर और पैग़म्बरोंकी सङ्गतिमें ईश्वरवाद और अनीश्वरवादकी चर्चा चला दिन और रात एक कर दिये; फिर भी,

उस महबूबका कुछ भी पता न पा सकी !

भूख और प्यास, राग और द्वेष, काम और क्रोधसे छटपटाते हुए संसारको जब मैं मिथ्या समझ, मनुष्यको केवल ख़ाकका पुतला मान, हताश हो जाती हूँ तो सहसा मेरी आत्मा बोल उठती है,—

क्या मानवी आँखें ईश्वरके अतुल तेजको सह सकती हैं ? क्या मानवी बुद्धि उसकी अनंत प्रेरणायें समझनेकी क्षमता रख सकती है ? क्या तेरा सीमित मस्तिष्क उसकी अनंत महिमाको जान सकनेका दावा कर सकता है जिसका भेद

शेष ओर शारदाने अनादिकालसे गुण-गान करते रहनेपर भी न पाया ?

पगली, प्रेम और विश्वासका पथ पकड़, तू सीधी उसके सिंहासन तक पहुँच जायेगी !

मैंने वेद-वेदान्त, पोथी-पुराण, श्रुति और शास्त्र छान डाले तो भी मैं उस महबूबका कुछ भी पता न पा सकी !

१३

अविश्वासके आँचलमें ऊँघते हुए विश्व,

भला तेरे पैर पखारने मैं क्यों आई ?

मुग्ध चुम्बनसे उद्वेलित ! तेरे जालसे निकलकर मैंने अनजानमें विराट् बननेका प्रयत्न किया है !

विश्वपति, यदि मेरे बिना उसे अनाथ होनेका डर है, तो तेरी ऋचा इतनी जटिल क्यों ?

१४

जब राग-द्वेषभरे जीवनसे मन उचट जाय, सौन्दर्य और सुरासे ऊबकर मृत्युकी बाट देखूँ, प्रकाश और पुष्प अंधकारमें विलीन हो जायें,—

और जीव अनंत कालरात्रिके अज्ञात, परन्तु, रहस्य-भरे द्वीपोंका अन्वेषण करनेके लिये प्रस्थान करे, तब,

तुम्हारी रूप-माधुरी मेरे मृत्यु-उनींदे नयनोंमें समा जाय,

तुम्हारे चिरंतन प्रेमका मंगल-प्रदीप मेरी महायात्राका बीहड़ पथ आलोकित करे, और

उसकी सुनहली स्मृतियाँ मेरा पाथेय बनें !

१५

नंदजूके द्वारपर खड़े रहकर वृषभानु-ललीने यह प्रार्थना की,

"ओ निद्रित संसारके संरक्षक दिक्पालो, उस मधुर शय्याकी रक्षा करना, जिसपर सोकर मेरा मुग्ध प्रेमी मेरे स्वप्न देखता है।"

१६

शाहज़हाँने अपनी प्रियतमा मुमताज़को चिरस्मरणीय बनानेके लिये ताजका निर्माण किया;

प्रेमके इतिहासमें अमर होनेके लिये लैला-मज़नू एक हो गये;

शाहज़ादी शीरींका प्रणय-पात्र बननेके लिये फरहाद मर मिटा;

प्रेमको भक्तिका अचल रूप देनेके लिये राजरानी मीरा दर-दरकी दिव्य भिखारिन बनी, दीवाना मन्सूर प्रेमी बननेके लिये, अनलहकका राग अलाप, हँसते-गाते शूलीपर चढ़ गया;

पुराने अफसानोंको नया करनेके लिये मैंने तुमसे प्यार किया, और,

उल्फतके अंगारेपर आई हुई राखको मैंने अपने प्रणयकी फूँकसे उड़ाकर उसे फिरसे जगमगा दिया !

१७

यामिनीके कोमल अंधकारमें तुम मेरे प्रसूतिका-गृहमें प्रवेश कर मेरे भालपर क्या लिख गईं, विधना ?

तुम विश्व-नियंताकी रचना-प्रणालीसे अनभिज्ञ थीं, और तुमने मेरे भाग्य-पटलपर ही प्रथम क़लम चलाना सीखा था;

विश्व-सूत्रधारकी निर्भीक आलोचनासे घबड़ाकर तुम उठ बैठीं, और तुम्हारे महावर-लगे पदाम्बुजोंने सियाही उलट दी,

सुलेख मिट गये,—अब मैं विश्व-पतिके श्वेत वक्षःस्थलका वह सियाह धब्बा हूँ जिसकी ओर संसार घृणाकी अंगुलीसे संकेत करता है !

मेरे भाग्य-पटलपर क्या लिख गईं री विधना ?

१८

जगके अभिशापसे जब प्रलय-प्रसून झड़ जायँ, वसंतके आनेपर भी कोयल न कूजे;

नायकके पुष्प-शरोंसे उल्कारानीकी तरल मूर्च्छा न टूटे, और

समयकी परिवर्त्तनशील गति स्थिर हो जाय तब, मेरे साकी, सम्भव है, तुझसे कोई पूछ बैठे, 'वे कौन थे?'

ठीक उसी समय तुझे थरथरानेके लिये कठोर आकाश-वाणी होगी, परन्तु,

तू अपने प्रति मेरे अखण्ड स्नेह तथा चिर-विश्वासको स्मृतिमें रख, अपने आपको सुराके स्निग्ध आँचलमें छिपा, इतना तो कह देना,—

'वह प्रेमको पीड़ाके जर्जर जीवनमें छिपाकर पालनेवाली सरल पुजारिन थी और वे उसी स्नेह-पूजित शिशुका संहार करनेवाले,

'चतुर संहार-कर्त्ता!!'

१९

शान्तोद्यानमें सुनहली धूप पत्तोंकी छायासे आँखमिचौनी खेल रही है;

देखते देखते शीतल मंद सुगंधित पवनने मार्गमें गुलाबकी पँखुड़ियाँ बिखेर दीं;

अब चंद्र-शुभ्र तितलियाँ निखरे आकाशमें हृदयोल्लास भरकर उड़ रही हैं,

और मेरे प्रीति-सुधा-स्निग्ध हृदयमें प्रेमके प्रवाल-रक्त अधरोंपर मँड़रानेवाली मंद मुस्कानका मधुर स्वप्न रह-रहकर झूम रहा है !

२०

यात्रा कर घर लौटनेपर भी मेरे पैरोंको उस समयतक विश्रांति नहीं मिलेगी जब तक मैं उसी ड्योढ़ी तक नहीं पहुँचूँगी जहाँसे मैं तुझसे बिदा ले, बिछोहको रोम-रोममें रमा, आई हूँ !

सुरभित सुमनोद्यानमें, यौवनकी प्रथम संध्याको, हँसते हुए अंधकारमें गन्धर्वराज मुझे वीणा बजानेकी शक्ति देंगे और तू—?

उस सुनहली गोधूलिके झीमते हुए धुँधले प्रकाशमें, वह चिरपरिचित सङ्गीत सुनकर, चौंक पड़ेगा !

तब,—पागल !

दीपक हाथमें ले, सङ्गमरमरके श्वेत द्वारपर, मेरे स्वागतको दौड़ेगा तू, और मैं

उस ऐंचभरे प्रत्यागमनकी प्रशंसामें कुछ गाकर तुझे मतवाला बना दूँगी ।

२१

सिरजनहारके अदृश्य हाथोंमें ब्रह्माण्ड, मालाके मणियोंकी नाईं, फिरते हैं;

पाखण्डी पण्डितो और दीनके दीवाने मुल्लाओ, आँख उठाकर ज़रा देखो, सोचो और ग़ौर करो! क्या तुम मत-मतान्तरके झगड़ों और मज़हबके पुराने फितनोंको एक बार ही सदाके लिये नहीं दफ़ना सकते? खुदपरस्तीको खुदा-परस्तीका रङ्ग दे क्यों अपने अन्धे अनुयायियोंको इस मुहब्बतके शिवालेको ढाहनेके लिये उत्तेजित करते हो? ईमान बेचकर अपनी पाक रूहको शैतानके हाथों सोंप अगर तुम कुबेरका ख़जाना भी पा गये तो वह क़यामतके दिन क्या काम आयेगा?

अल्लाह इस कुफ्र और मुसलमानी दोनोंपर बरबस हँसता है, और आँसू बहाता है! उसके क्रोधसे अपनेको बचाना। या रब, इन मूर्ख पर मक्कार गुनहगारोंपर रहम कर।

सिरजनहारके अदृश्य हाथोंमें ब्रह्माण्ड, मालाके मणियोंकी नाईं, फिरते हैं।

२२

रजनीके अवसान-कालमें, जब प्रभातकी धूमिल रेखायें खिंच आती हैं, मेरी तन्द्रा टूटती है, और,

मैं किसी सुदूर अतीतकी भूली हुई स्मृतिमें बेगानी हो जाती हूँ; हृदयके मूक भाव आँखोंमें प्रतिबिम्बित होते हैं, और उन्हें पढ़कर मेरा प्रीतम कुछ खिन्न-सा हो जाता है;

विचार-धाराके इस प्रवाहको वह थाम नहीं सकता कि भला, उसके पार्श्वमें रहकर मैं कौन-सी अलभ्य वस्तु-विशेषकी वांछा कर सकती हूँ ? मेरे आत्मसमर्पणमें उसे सहसा संदेह होता है, किन्तु, उसके विश्वासको दृढ़ बनानेको मैं कहती हूँ, ' तू तो उस प्रेम-मूर्तिकी छाया-मात्र है । '

वह सुनकर सन्न हो जाता है ।

रजनीके अवसान-कालमें किसी अतीतकी भूली हुई स्मृतिमें बेगानी हो जाती हूँ !

२३

सुषमाभरी संध्यामें, जब मैं दिन-भरकी क्लान्त वेदनाको विश्रांति देनेकी आतुरतासे उड़नेवाले गगन विहारियोंको अपने नीड़ोंकी ओर उड़ते देखती हूँ, तब न मालूम क्यों मृत्युका काला रुदन गगनकी गरिमामें छाकर मुझे बेबस बना देता है !

निर्मम रात्रिके अचल अंधकारमें जब मैं अपने सुख-स्वप्नोंको सजीव करनेके लिये कर-पल्लवमें खिंची विधनाकी टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें मिटानेकी चेष्टा करती हूँ तब सहसा न मालूम कहाँसे तमचुर बोलकर मुझे प्रातःकालका आभास करा देता है !

२४

प्रेमी, तेरे चरणोंपर मैंने क्या नहीं चढ़ाया ?

पुलकित प्रार्थना और प्रशंसाका कोमल आनंद, यौवनोन्मादित दिनोंका विकसित माधुरी-मञ्जु कविता-पुष्प,

रहस्यमयी आशा, आकांक्षा, और स्मृतिके सुनहले स्वप्न,—

मृत शोकातुर वर्षोंकी विभावरी मनोवेदना, उच्छ्वास और आँसू, शोक और भय,—

प्रेमी, तेरे चरणोंपर मैंने क्या नहीं चढ़ाया ?

२५

मेरे सुनसान यौवनकी अशान्त घड़ियोंमें यदि तुम्हें पा जाऊँ तो कोटि कल्पोंतक सूर्यको आँचलकी आड़में कर प्रकाशको बाँध रक्खूँ;

बिछुड़नकी विषम वेदनाको भूल जानेकी चेतना आने तक जगतको सुषुप्तिका स्वप्न दिखाऊँ;

निरंतर जीवनका भक्ष्य लेनेवाली भूखी मृत्युको हृदयका उष्ण रक्त पिलाकर विस्मृतिके पर्देमें आश्वासन दूँ;

जीवनमें एक बार तुम्हें पा जाऊँ तो रचयिताकी उल्टी रस्मोंको बदल कर स्वयं ऋचा बन जाऊँ!

२६

मुझपर फूलोंकी वर्षा न करो, देव,

मैं तो तुम्हारी अनंत दयाका भार वहन करते करते झुक गई हूँ;

मुझे वैभवका दान न दो, दिव्य,

मैं तो तुम्हारी यौवन-परछाईंका ओज देखकर ही इठला गई हूँ;

मुझे अमर होनेका वरदान न दो, वरदाता, मैं तो तुम्हारा जीवन देख कर ही जीनेसे अघा गई हूँ!

२७

सन्ध्या होते ही मैं सरोवरपर जा बैठी;

बिना सावनके ही बदरिया झुक आई,

और वर्षा प्रारम्भ हुई। बड़ी बड़ी बूँदें आकाश-मोतियोंकी तरह उछलतीं, नृत्य करतीं, और पानीमें मिल जातीं। मैं देखती रही, और मल्लार गा-गाकर रागिनीको लहरोंमें रमाती रही।

सुहावनी संध्या धीरे धीरे नीरव रजनीमें बदल गई। युवती अँधेरीने शय्या बिछाई; मेघने अलकें बिखेरकर शयन किया,—

मेरे पीछे दामिनी छिप छिप कर उसे निरखने लगी और अकेला पाकर मीठी मुसकानसे उसे रिझाने लगी।

समय पाकर उसने संकेत किया;

वह गई,

उसने प्रथम चुम्बनके साथ आलिङ्गन भी किया; ऐसे अभिसारको निहार कर मैं हँस पड़ी।

उसने सुना, वह झेंपी, मुसकराई, और फिर मुझीपर टूट पड़ी!

२८

विदेशके लम्बे प्रवासको समाप्त कर जब तुम घर लौटो, तो इस कुटियाको पावन करना न भूलना, जहाँके जलते हुए चिराग़को गुल कर, रक्तके तिलकपर मोतियोंका शृंगार सजा, चेतनाहीन यौवनमें प्रणयके प्रथम चुम्बनका उन्माद चढ़ा, बिदा हुए थे।

तुम्हारे गमनमें उत्साहके आकुल पर लगे थे, और मेरे हृदयमें वेदनाका अथक ज्वार उठ रहा था। मैं न पूछ सकी, 'तुम कहाँ चले और फिर कब लौटोगे?'

पर,

तबका प्रदीप बुझा पड़ा है, और मैंने उसे अपने आप प्रज्वलित करनेकी कल्पना तक नहीं की है!

प्रवाससे जब घर लौटो तो इस कुटियाको पावन करना न भूलना!

२९

मुझे ठुकरानेवाले, तेरा जीवन प्रकाश-पूर्ण हो, सदैव तू सानंद सुरभित प्रभातका अभिवादन कर; परन्तु,

भाग्यका घूमता हुआ ताण्डवकारी राजदण्ड किसे छोड़ता है? कालके कुटिल चङ्गुलमें फँसकर कहीं तू अपनी उभरती हुई विभूतियोंसे बिलम जाये,—वंचित हो जाये, तब सम्भव है,—

भूले भोगी,—

सम्मान हँसी, और जीवन भार प्रतीत हों; मित्र शत्रुकी गरज पालें, और हृदय-हीन संसारके लोलुप श्वान तेरी आत्माके वीतराग-पटपर कालिख पोतें,—उसे घेरकर घोर घृणाका भयंकर चीत्कार करें;—तब हाँ, तब सम्भवतः,—

मेरे प्रेमी, तुझे यह सूझे,—

'उस पार मेरा एक स्नेही है, निर्वासित हृदय है!'

मैं नितान्त अकेला ही क्यों न होऊँ,—मेरी सांत्वना और सराहनाके लिये भले ही कोई क्यों न हो, परन्तु,

संसार-सागरके उस पार मेरी डोंगीकी रखवाली करता हुआ एक अभिन्न है,

जिसका मुझमें अखण्ड विश्वास है,

वह मेरी अनंत यात्रामें अंततक अवश्य साथ देगा!

३०

अलमकी फौज़ने मेरा गुलशन उजाड़ दिया !

कहाँ गये वे मधुप जो इठला इठला कर मेरे चमनकी कलियोंका रसास्वादन करते थे ?

कहाँ अंतर्हित हुए वे बुलबुल जिन्हें यह उल्फतका उद्यान था सदा मुबारक, और जहाँ गूँजता था रात और दिन प्रेमका राग उनकी ज़बाँसे ?

कहाँ बसती हैं अब वे सूरतें जो इस बोस्ताँमें झूम-झूम कर चाँदके प्यालेमें अंगूरका आसव पी पी कर बेसुध हो जातीं थीं ?

ऐ मेरी बिगड़ीको बनानेवाले,

अगर मैंने मौसमे बहारमें, अपने शबाबमें, तुम्हें अपनी प्रेम-वाटिकामें, सघन वृक्षोंकी शीतल छायामें, तुम्हारे जीवनकी अलसायी दोपहरीमें, सोने दिया, और पत्र-फल-फूल और अर्घ्यसे तुम्हारा आदर-सत्कार किया, तो, वल्लाह, क्या हुआ,—कोई स्मृतिके योग्य सेवा तो थी नहीं ?

मेरी जुस्तजूमें अपनेको बर्बाद न करो,
मेरे पास अब सिवा ख़ारोंके बचा ही क्या है !
अलमकी फौज़ने मेरा गुलशन उजाड़ दिया !

साँझकी भरी बेलामें जब सूर्य, गिरि-शिखरोंपर द्रवित प्रकाशकी निर्झरिणी बहा, अपना किरण-जाल समेट, क्षितिजके आँचलमें रैन-बसेरा ले;

कमल अपनी कोमल सुगंधभरी पँखुड़ियोंको बंद कर प्रशांत सरोवरकी मञ्जु जल-राशिपर दिन-भरकी क्लांतिसे व्याकुल हो धीरेसे ढुलक जाय;

नृत्य-कला-विशारद मयूर भी सूर्यास्तके सात रङ्गोंको अपनी पूँछमें गूँथ किसी सघन वृक्षकी ऊँची डालीपर गहरी विश्रांतिकी खोजमें ऊँघने लगे; तब,

प्रीतम, तुम भी अपने वैभवका अंत कर मेरे सुगंधि-सिंचित केश-कलापमें आ रात व्यतीत करना;

मेरे वक्षःस्थलमें आहिस्तेसे आ छुप जाना, वहाँ तुम्हारे झुलसे गात और जीर्ण आत्माको उषाके स्वर्ण-युग तक अनिर्वचनीय शान्ति प्राप्त होगी !

३२

'भूलन हेतु पढ़ो,'—किसी प्राचीन कालके पण्डितका कथन है;

निर्दयी विधाताकी क्रूर कुटिल चालें, दिव्य देवताओंकी मुग्ध मानवोंके प्रति अगाध घृणा,—भूल जाओ !

काल शीघ्र इस कहानीका अंत कर देगा ! रुधिरके ठंढे पड़नेके पूर्व माधवीकी प्याली भरो, अलसाये हुए सौन्दर्यके मधुर चुम्बनसे, रक्त-कनेर-से कोमल अधरोंसे, नागिन-सी लटोंसे, भूलकी शराब तैयार करो !

किन्तु,

तू मेरी प्याली भरेगा, मेरे साकी, पृथ्वीकी अनंत सुषमा और आह्लाद ही मदिरा होगी ! सत्य और शांति, प्रेम और पवित्र आनंदके दिव्य घूँटमें भर भर जाम पीऊँगी !

मुझे क्या भूलना है—?

तुझे देखते ही मैं अपनेको भूल जाती हूँ !

३३

अखिलके विश्वासशून्य पटलपर मुझे सुलाकर न मालूम तुम कहाँ जाओगे !

सङ्ग-तराशकी मेहनतपर रहम खाकर समयके पूर्व ही दिवाकर डूब जायेगा;

मृणालिनी मधुकरको अपने हृदय-कोशमें क़ैद कर प्रणयके सुखद स्वप्न देखेगी ;

मूँदे नेत्र खोल उलूक धूम मचावेंगे, निशिगंधा खिलकर मेरे विस्मृत आवासमें स्मृतिकी विष-बूँदें छींट देगी; मानव आकृतिमें तुम्हें खोजती खोजती स्वयं खो जाऊँगी,—

और सब होंगे, केवल तुम ही न होगे ! हाय ! अखिल-विश्वके विश्वास-शून्य पटलपर मुझे सुलाकर न मालूम तुम कहाँ जाओगे !

३४

मुझे कहाँ चलनेका संकेत करते हो, अज्ञात ? सर्वत्र अभेद्य अन्धकार है;

मेघ-सघन आकाशमें एक-आध तारा गोरे-गरीबाँके बुझते हुए चिराग़-सा टिमटिमा रहा है; और मार्ग है मेरा अपरिचित ।

तुमने तो असमयमें ही कूचका डंका बजा दिया; अरे, मिलनकी मधुर घड़ियोंमें यह कठोर नाद कैसा ?

क्रूर, न हँसो,—इस सुहावने समयमें मुझे तुम्हारा यह विद्रूप हास्य नहीं भाता ।

हाय ! अभी तो कुशल-क्षेम भी न पूछ पाई थी कि तुम काल-दूतकी तरह आ उपस्थित हुए । यौवनकी सुषमा समाप्त होनेतक मैं तुम्हारे संकेतकी अवहेलना करूँगी !

मुझे चलनेके लिये बाध्य न करो, अज्ञात, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ !

३५

बिछुड़े हुए मिलेंगे, तब हम क्या करेंगे ?

वह मिलन हर्षमें होगा या आँसुओंमें ?

वर्षोंने स्वास्थ्य और सौन्दर्यको क्षति पहुँचाई है, उसका हिसाब लगायेंगे ?

अथवा,

दैवकी देनको ग्रहण कर, प्यालीमें जो थोड़ीसे बूँदें बच गई हैं उन्हें तलछट तक पी, पात्रको रिक्त कर, सोचेंगे कि अतीतमें किस आशा और प्रेमसे प्याली भरी थी ?

अथवा,

चन्दन और भस्मकी राखको स्मृतिके आँचलमें उड़ाकर सोचेंगे कि समयने क्या लिया और क्या दिया ? प्यारे, तेरा चारु हाथ अपने हाथमें ले, तेरे अथाह नयनोंमें अपनी रूपरारी छबि निरखूँगी,—न हँसूँगी न रोऊँगी !

क्रूर कालने विरहका जो कलेवा लिया है, उसे उसीके भूताकृति चरणोंमें रक्खेंगे, क्योंकि जीवनकी सबसे अनमोल वस्तु न वह लेता, न देता ही है !

बिछड़े हुए मिलेंगे, तब हम क्या करेंगे ?

३६

पागल, तुम भरमाये गये हो,

इस व्यथा-जर्जर आँचलमें ऐश्वर्यकी खोज करना गहरे भुलावेके सिवाय और है ही क्या ?

तुम्हारे नयन धोका खाते हैं, मेरी सुराहीमें सनेह नहीं है, इसमें तो बरसोंके जीवन-मंथनका गरल भरा है जिसकी गंध-मात्रसे तुम उलट पड़ोगे !

भूलते हो युवक, मैं मदान्ध नहीं हूँ और न मैंने तुम्हें अपनी तलछट-तक रिक्त मधु प्यालीको दिखाकर ललचाया ही है;

मैंने तुम्हें ठगनेका प्रयास नहीं किया,—तुम स्वयं अपने आपसे ठगे गये हो !

३७

पके आमकी तरह मृत्युकी गोदमें टपकूँगी !

शैशवके सहज स्नेहकी अमिट स्मृतियाँ, अचेतन मुग्धाका अथक प्रेम और उसकी श्रुति-मधुर सुनहली कहानी,

रूपगर्वित यौवनका स्वप्निल परिमल और असीम विरह-वेदना,

प्रौढ़का जीवन-मन्थनसे निकला हर्ष और विषाद, विष और अमृत, और,

जराका ज्ञान,—नहीं नहीं अभिशाप, जीवन-तरुके इन प्रसूनोंको अपनी झोलीमें भर पके आमकी तरह मृत्युकी गोदमें टपकूँगी !

३८

मेरे प्राण तुम्हारे बिना कैसे जीवित हैं ?

बिना ही सनेहके तारे जलते हैं;

बिना ही काष्ठके निरंतर चिन्ता सुलगती है;

धधकती चितायें बिना ही नीर शीतल हो जाती हैं;

स्थूल साधनोंके बिना भी सुन्दर सृजन होता है, संकेत-कर्त्ताके अज्ञात होनेपर भी मृत्युका कार्यक्रम नियमित होता है,

ऐसे ही तुम्हारे बिना भी मेरे प्राण जीवित हैं !

३९

मुझे मृत्युसे भय लगता है क्योंकि मेरा जीवन-घट पापोंसे भरा है ;

मैं प्रायश्चित्तसे दूर भागती हूँ क्योंकि मुझे स्वर्ग-सुख भोगनेकी वांछा नहीं;

मुझे उसे अपना कहनेमें भी संकोच होता है क्योंकि मेरे प्रणयमें स्वप्रेरणाओंका आधिक्य है;

मैं उसके निकट जानेसे घबराती हूँ क्योंकि उसके सहवासकी सुख-कल्पना-मात्रसे सिहर उठती हूँ !

४०

हमारी सङ्गीत-लहरी कोकिलको मुग्ध नहीं करती, किन्तु उसकी कूजन सुन हम क्यों झूम उठते हैं ?

हमारा वस्त्राभरणालंकृत सौन्दर्य वसंतमें प्रकम्पन उत्पन्न नहीं करता, फिर भी हम उसके आगमन-मात्रसे क्यों बेसुध हो जाते हैं ?

मृत्यु जीवनकी अवहेलना और उपहास करती है, तो भी, न मालूम, क्यों पल-पलपर वह निगोड़ा अचरजभरी उत्कंठासे उसकी ओर खिंचता जाता है ।

४१

स्मशानके नीरव हृदयपर बैठकर बुलबुलने गाया,

‘ कुमुदिनी निस्तब्ध रजनीकी भ्रमर-काली पलकोंमें सुरमा सार रही थी;

‘ चाँद ज्योतिके आँचलमें छिपा तारिकाओंसे गगन-मण्डलमें क्रीडा कर रहा था;

‘ मैं पुष्पोंका घूँघट निकाल संकेत-स्थलपर अभिसारके लिये चली;

‘ चार आँखें होते ही मैं झेंप कर ठिठक गई;

‘ उभरते हुए प्रेमोद्गारोंका उलहना देनेके पूर्व ही सुरभित श्वासमें श्वास मिलाकर उन्होंने पूछा, क्या चाहती हो ?

‘ मैंने रोमाञ्चित हृदयको थाम कर कहा—मृत्यु ।

‘ अधरसे अधर मिले,—

‘ मैं अचेत हुई, और मेरे प्राण-पखेरू उड़ गये ! वह सुखद स्वप्न इस बुलबुलके जन्ममें भी मेरी स्मृति पटलपर ज्योंका त्यों अंकित है ! ’

४२

मन-मृग काहे डोलत फिरे ?

तृष्णाकी तप्त मरुस्थलीपर मध्याह्नका सूर्य चमक रहा था;

तृषा-क्लान्त मृग सुन्दर क्षितिजके उस पार शीतल जलके स्रोतपर हाँफता, चौकड़ी भरता, अपनी प्यास बुझाने चला जा रहा था;

एक मृग-शावक-नयनीने आकाशको मेघ-शीतल करनेके लिये सारङ्ग छेड़ी;

नादका प्रेमी, भोला जीव, रागके प्रवाहमें बहता बहता उस युवतीके निकट पहुँच गया, परन्तु, पथ-भ्रष्ट हो वह उस विशुद्ध जल-स्रोतसे भटक गया जो उसे ज्ञानामृत पिलाकर अनंत शांति देता !

मन-मृग काहे डोलत फिरे ?

४३

चाँदनीमें लवलीन चकोर जब चंद्रपर निछावर होनेको आकुल होता है, तब आकाशके यौवनोद्यानमें क्रीडांगना तारिकायें न जाने क्यों हँसती हैं !

जब भौंरे भोले सुमनोंको तरसा तरसा कर इठलाते हैं, तब अनंतके दीर्घजीवी ज्योति विहार करते हुए भी न मालूम क्यों निःश्वास रखते हैं !

जब सूने खेतमें अन्नदाता पसीना सींचते हैं, तब वे माधवीके घूँट पी, साकीके चरण क्यों चूमते और छटपटाते हैं ?

जब वर्षा आती और चली जाती है, तब हे सरोवर, तेरे तटपर, घने कुञ्जमें, न जाने क्यों मैं दो पक्षियोंकी कल्पना करती हूँ,—उन्हें गगन-विहारी पाती हूँ; और,

यह जानकर सिहर उठती हूँ कि उनमेंसे एक मुझे देख-कर न जाने क्यों रोता, और दूसरा क्यों हँसता रहता है !

४४

पुष्प प्रस्फुटित होकर ही जीवनकी साध मिटाता है,
मुरलिका मदनमोहनके अधर-संकुलके कोमल चुम्बनसे ही मदभरी हो प्रमुदित होती है;

कविता अपना प्रशंसक पाकर ही अमर काव्यका रूप लेती है;

बालक वात्सल्य पाकर माँकी आकृति भूल जाता है;

प्रेमी पानेपर ही रूप और यौवन अपनी पूर्ण माधुरी प्राप्त करते हैं;

तुम्हारे हाथसे गिरकर चूर चूर होनेमें ही मेरी माधवी-भरी जीवन-प्यालीका अखण्ड सौभाग्य है !

४५

श्रोता न हो तो भी गायक अपनी एकान्त तन्मयतामें उद्भ्रांत आनंदका अनुभव करता है;

पूजा स्वीकार करनेवाली प्रतिष्ठित सजीव प्रतिमा न हो तो भी पुजारिन अपने ध्येय तक कल्पना चढ़ाकर ही तुष्ट हो जाती है;

प्यासेके लिये निर्मल नद हो, तो भी, मृग-मरीचिकाकी ओर ही लम्बी लम्बी डगें भरनेमें विचित्र आह्लाद है !

४८

गोरी, रूपसीके प्रकाशमें मोती पिरो ले !

इन चंद्रमणि-सी दिव्य आँखोंपर मत इठला जिनमें प्रकृतिकी सब सुषमा भरी है;

इस घुँघराले काले केश-कलापपर भी न इतरा जो सुगंधित समीरके साथ अठखेली करता है;

तेरे गोरे गुलाबी गालोंपर भी इतना गर्व न कर जिन्हें देख फारसके गुलाब भी ईर्षासे बदरंग हो जाते हैं;

न उन अनमोल मोतियोंकी लड़ियोंपर ही अभिमान कर जो हास्यके साथ ही तेरे रक्त-अधर-गुलाबोंमें धवल तुषारकी कांति लिये चमकती हैं;

रूपगर्विता, उस चाँदसे मुखड़ेपर भी इतनी न फूल जिसकी द्युतिसे सब नक्षत्रोंकी ज्योति निस्तेज हो जाती है;

न उस सितम ढाहनेवाली मोहिनीपर ही,—जो सब हृदयोंको तेरे बन्दी बना देती है,

गोरी, ' चार घड़ीकी चाँदनी, बहुरि अँधेरी रात, '

रूपसीके प्रकाशमें प्रेमका मोती पिरो ले !

४७

यहाँ मेरे सुन्दर दिन कितने शीघ्र पूरे हो जायँगे, और फिर मैं पृथ्वीपर कभी ढूँढ़े भी न मिलूँगी !

मेरे भटकते भगवान, बताओ तो, मुझे कहाँ ढूँढ़ोगे ? न कलकल करनेवाली कलिन्दजाके शीतल कूलपर, न वहीं जहाँ वायु बाँसोंके सुरीले कानोंमें अपनी विभावरी-कहानी कहती है, न घनी पहाड़ियोंके देवदारु-सुगंधित वनमें, न वनस्थलीपर जहाँ मधुमय मकरंदके लोभी भ्रमर गुञ्जार करते हैं और रङ्गीले ग्वाल-बाल बाँसुरी बजा बजा कर अपनी बिखरी और झूमती गउओंको गोधूलीमें एकत्रित कर घर ले जाते हैं !

मेरे माधव, कहो न मुझे कहाँ खोजोगे ?

मेरी इन बावली बतियोंकी बात सुनोगे क्या ? मैं वंचिता हूँ;

जीवनकी लौ मृदुल मृत्तिकाके दीपकमें शीघ्र बुझ जायेगी; मनोवेदना, प्रेम, लिप्सा और तप्त आँसू मुझे दग्ध कर रहे हैं। शीघ्र ही उस अंधकारसे वह सौरभ-प्रवाह मुझपर बहेगा,—फिर ये तरल-तारिका-कान्त किरीटेन्दु और तेजोमय तमारि भले ही ढूँढ़ें,—परन्तु,

मेरे मौला,

यहाँ मेरे सुन्दर दिन कितने शीघ्र पूरे हो जायेंगे और फिर मैं ढूँढ़े भी न मिलूँगी !

४८

मेरा अंतिम प्रणाम स्वीकार किये बिना ही तुम एकाकी कहाँ चल दिये ?

तुम्हारे मर्माहत करनेवाले सहसा गमनसे मैं विस्मित न हुई, अप्रतिभ न हुई, विचलित न हुई, क्योंकि मैंने जाना कि तुम जानेका अभिनय कर कहीं छिपे हो, और मेरे रूठनेकी आशंका-मात्रसे थर्राकर पीछेसे आ, मेरे नयन मूँद, हँस पड़ोगे !

मैंने तुम्हारे इस अनंत-गमनको न समझा, यात्री,
तुम तो नेह लगाकर बिना ही बिदा लिये चल दिये !

४९

मालिन, इन अर्धविकसित बकुल कलियोंको मत छेद, ये तो मधुकरके चुम्बनसे मलिन हो चुकी हैं;

इस कोमल दूबको भी तेरी डलियामें न भर क्यों कि वह ओसाश्रुओंसे भीगकर विकृत हो गई है;

ये बेल-पत्र भी मेरे देवता स्वीकार न करेंगे क्योंकि इनमें भी समीरका कम्पन व्याप्त है !

मेरे उपास्यके लिये तो चाहिये अछूता उपहार । मालिन, इन बकुल कलियोंको न बेध !

५०

गोपिका, नीर और क्षीरको मिलाकर मुझे धोखा न दे, क्योंकि, मुझमें हंसका विवेक नहीं है !

स्थावर संसारपर प्रातःकालकी गो-धूलि छा गई है;

ग्वाल-बाल गायें लेकर यमुना-तटकी वनस्थलीकी ओर गये हैं, और कदम्बकी छाँहमें आँख-मिचौनी खेल रहे हैं;

तेरे आँगनमें ग्वालिन प्रभाती गा-गा कर उपले थाप रही है;

मैं समयको बाँधकर तेरे द्वारे दूध लेने आया हूँ;

नीर और क्षीरको मिलाकर मुझे धोखा न दे, क्योंकि मुझमें हंसका विवेक नहीं है !

५१

मैं अज्ञात थी !

हृदयमें राग-कलीका अर्ध-आवृत्त मुख विकसित हुआ ही चाहता था;

यौवन-वसंत शरीरोद्यानमें कांतिमय लावण्यकी बहार लाया था।;

उन्मनी आँखें अपना चांचल्य छिपानेमें असमर्थ थीं;

मन-मधुकर जीवन-वाटिकामें पुष्पोंकी चाटमें इधर-उधर मँड़राने लगा;

रङ्ग-बिरङ्गे सुमनोंकी शोभा दर्शनीय थी ।

उपवनका वह यौवन-विहार ! कुछ दूर उड़कर मेरी दृष्टि एक अर्ध शुष्क नीरस नलिनपर पड़ गई; ज्ञात न था कि वह सौरभ-हीन है;

हृदयका वह मूक दान !

गुलाब छोड़ा, बेला छोड़ा, और कुन्दवनकी ओर देखा तक नहीं;

उसीके म्लान सौन्दर्यपर मुग्ध हो गई ।

वह पागल पिपासा !

उसे प्राप्त करनेको हाथ बढ़ाया, सूँघनेका प्रयास किया, तोड़कर आँचलमें छिपाना चाहा, आलिङ्गन चाहा, मधुर चुम्बन चाहा !

परन्तु दुर्दान्त दुर्दैव !

सहसा लाल आँखें दिखाते हुए मालीने प्रवेश किया;

मैं ठिठककर एक ओर खड़ी हो गई;

क्रूर हृदयहीनकी कृपासे निराशाके अतिरिक्त कुछ भी न मिला;

सोचा था उसे सावधानीसे रक्खूँगी, और समय आनेपर मैं उसे अपने हृदय-पुष्पके साथ ही मातेश्वरीके चरणोंपर चढ़ा दूँगी,—

परन्तु, पागलका तिरस्कृत प्यार !

उसीके चिन्तनमें डूब गई, विह्वल हो गई, बौरा गई; छोटी-सी कुसम-कलिका तो थी ही !

क्या करती ?

विरह-निदाघने प्रस्फुटित होनेके पहले ही कुचल दी !

मुग्ध प्रेमियोंका अंतिम ध्येय ! प्रेम-पथपर काँटे बिछे;

महायात्रा प्रारम्भ हुई; पैरोंसे रुधिर बहा; परन्तु,

अज्ञानका पर्दा हटा; मैं रुकी, प्रकाश दिखा,

मैं चौंकी !

अज्ञातके ऐसे प्यारका जय-जय-नाद हो !

५२

अनमोल अनुपम,

क्या तू वह पका, लाल झाईं लिये हुए, पीला आम है जो सबसे ऊँची डालपर लगा हुआ है और जहाँ मुग्ध चयक इच्छा होनेपर भी नहीं पहुँच सकता ?

फिर भी क्या मैं तेरा चयन न करूँगी ? क्या तू वह कमल कोष है जिसे गोवर्धनके ग्वालेने पैरोंतले रौंद कर जमीनमें कुचल दिया है ?

फिर भी क्या इन पलकोंके प्रकम्पित पाँवड़ों-द्वारा तुझे मैं न उठाऊँगी ?

अरे ओ बेवफा,

प्रेमके मर्मको पहचाननेके बाद, प्रेमी मिले या न मिले, परवाह नहीं पाँख हुमाकी !

५३

आकाशमें बसनेवाले ज़ालिम,

तेरे जल्लादका खञ्जर मेरे सरपर झूल रहा है; तो भी, मेरी हकीक़त तो सुन ले;

जीवन और मरणके विधाता, मुझे अमर गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़ने, और तेरी अवैध सत्ताको मुझपर आज़मानेके लिये ही तो तूने विश्वकी रचना की है, फिर बता, मैं तुझसे न्यायकी आशा कैसे रक्खूँ ?

मेरी ज़बानमें तेरे .ज़ुल्मोंकी व्याख्या करनेकी शक्ति नहीं है, इसलिये तेरे अत्याचारोंको, अब तक, मैं बिना किसी प्रतिरोधके सहती चली आई हूँ !

ऐ सङ्गदिल, तुझे मैं कैसे दयासे द्रवीभूत करूँ ?

देवता, अपने अदृश्य और सुरक्षित स्वर्गसे मुझपर निरंतर कुलिश बरसा।

मैं अबला तेरे सिंहासनकी छोरहीन छायामें खड़ी तेरा क्या अनिष्ट कर सकती हूँ ? तू ही विधान, तू ही न्यायाधीश, और तू ही सरको धड़से जुदा करनेवाला जल्लाद है;

फिर, तुझसे इन्साफ पानेकी उम्मीद रखना बौनेका चाँदको चूमनेके लिए छटपटाना है !

आकाशमें बसनेवाले सनम,
तेरे जल्लादका खञ्जर मेरे सरपर झूल रहा है,
तो भी मेरी हक़ीक़त तो सुन ले !

५४

कठोर कर्तव्य ही सच्ची उपासना है;

निःस्वार्थ सेवा ही ईश्वरीय धर्म है;

सफाई करनेवाले भङ्गीकी पूजा, मन्दिरमें साष्टाङ्ग दण्डवत करनेवाले भक्तकी अपेक्षा, चराचरके स्वामी परमेश्वरको विशेष मान्य है;

सड़कपर पत्थर तोड़नेवाले सङ्ग-तराशकी अर्चना पत्र-पुष्प जल-चंदनका अर्घ्य देनेवाले पुजारीकी पूजाकी अपेक्षा भगवानको अधिक प्रिय है;

सुधा पान करनेवाले देवताओंकी अपेक्षा गरल पान करनेवाले शिवका ही विश्वपर अधिक उपकार है !

५५

मुझसे मत मिल मोदभरे,

मैं उस रत्नखचित सुराहीमें भरा हुआ गरल हूँ जो तुम्हें मौतके घाट उतारनेके पूर्व ही तुम्हारी सब विभूतियाँ हर लेगा;

मैं उस स्नेह-शून्य प्रदीपकी प्रज्वलित लौ हूँ जिसके प्रकाशमें मानव भूत, भविष्य और वर्तमानको हस्तामलकवत् देख सकता है, किन्तु, तुम्हारी नयन-ज्योतिकी छायामें वह एक क्षणके लिए भी स्थिर न रह सकेगी;

मैं विश्व-सुन्दरीके पुरातन आँचलसे बहनेवाला वह सरस नद हूँ जिसके आचमन-मात्रसे इन्द्रासन निकट आ जाता है, किन्तु,

तुम्हारे स्पर्श-मात्रसे वह सूखकर पथरीली धरणी बन जायगा !

मेरा विनीत निवेदन मान मुझसे न मिल मोदभरे !

५६

प्रेमी, तेरी आँखोंको किसकी उपमा दूँ ?

ओजसे उभरते हुए अरुणसे देती, किन्तु, तेरी नयन-किरणोंके सामने उस गुलाबी बिम्बकी क्या हस्ती ?

प्रेमी, तेरी आँखोंको किसकी उपमा दूँ ?

जलजसे देती, परन्तु,—कीचड़में होनेवाले राग-हीनोंकी क्या हस्ती ? वे तो उनकी सुनहली रस-बूँदोंसे ही मुखरित हुआ करते हैं !

ऋषि-मुनियोंने सुषमा-सुन्दरीके नख-शिखको जान लिया;
कोविद-कवियोंने विश्वके हृदयको छितरा दिया;
देवताओंने स्वर्गकी सार-हीन धूलिको छान डाला;
युगयुगान्तरसे विहंगोंने अमर-स्तोत्र कलरवमें गा डाले—परन्तु, तेरे नयनोंके लिये मुझे उपमा न मिली !

मैं हार जाती हूँ, और मुस्करा उठती हूँ,—शायद इसी भावनामें कहीं तेरे नयनोंकी उपमा छिपी है ! !

५७

प्रेमी, सन्ध्यामें वायु मन्थर गतिसे विचर रहा है, तब तेरे आगमनमें क्यों विलम्ब हो रहा है ?

दिनकी कड़ी धूपमें तपे हुए तमाल शांत और शीतल अंधकारमें कम्पित हो रहे हैं; और

सीनेतक पहुँचनेवाली बरू भी सन्ध्याके गोधूलि-कणोंमें अपनी दोपहरकी अतृप्त पिपासा बुझा रही है—

पर मैं,—

केवल मैं ही कभी न बुझनेवाली आगमें जल रही हूँ !

निर्मम निशाने मुझे घोर विडम्बना, और मेरे बिलमाये प्रेमीने मुझे विरहका धधकता दावानल प्रदान किया,—

ओ वरदाता,

मेरी पूजाका यह वरदान भी क्या अमर न होगा ?

५८

मैं तो अपनी करतूतोंसे खुद ही खीज उठी हूँ, न मालूम तुम उनपर क्यों दीवाने हो ?

इस विराट् जीवनकी जटिल गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयास न करो, पागल, उनींदे यौवनसे जवनिका उठाकर छिद्रान्वेषण करनेसे तुम्हारी आत्म-तुष्टि न होगी;

प्रौढ़के कल्पना-कलित स्वनिर्मित चित्रोंको देखकर तुम प्रमुदित न हो, मेरे अर्चक,—

वे तो भविष्यको केवल भुलानेके असफल प्रयास हैं !

मैं तो अपनी काली करतूतोंसे खुद ही खीज उठी हूँ, न मालूम तुम उनपर क्यों दीवाने हो !

५९

ओ लोनी ललने,

ढाकेकी मलमल, बनारसके रेशमी दुपट्टे, और काश्मीरी शाल तेरे लिये लाया हूँ जिससे तेरे दीप-शिखा-से सुरम्य सौन्दर्यकी शोभा अनुपम हो जाय;

वासंती वामा,

सुवर्णकी कंघियाँ, सप्तरङ्गी धागे और रत्नजटित आभूषण मेरी मञ्जूषामें रक्खे हैं; देख, कहीं यह मत समझ जाना कि तेरा प्रेमी खाली हाथ आया है;

और ओ कुञ्जगलीकी चितचोरटी,

वृन्दावनसे मैं एक ऐसी मुरली लाया हूँ, जिसमें विद्याधरोंने प्रेम, आकांक्षा और वांछा छिपाई है—

ऐसी महिमामयी मुरलिका तेरे करारविन्दोंमें मैं अर्पित करूँगा !

६०

यौवन! अरे उस दीदार-सा यौवन और हुस्न न कभी किसीका था, न होगा;

उस सौन्दर्यकी समता वे देव-बालायें भी नहीं कर सकतीं जो स्वर्गद्वारपर पुण्यात्माओंका पवित्र चुम्बनसे स्वागत करती हैं,

उसके आकर्ण-नेत्रोंसे आनन्द, ज्योति और हास्यके फ़व्वारे छूटकर सबको मुग्ध कर लेते थे और उसके सङ्गीतको सुन-कर आकाशमें विचरण करनेवाले देवदूत भूतलको स्वर्ग समझ भूलसे नीचे उतर आते थे;

उस अनुपम सौन्दर्यकी स्मृति-मात्रसे आज कितने स्वप्न जाग्रत् होते हैं!

उस दिव्य स्फटिक-निर्मल सरिताके पुलिनपर खड़े रहकर दो चुल्लू पानीसे अपनी अथक प्यास बुझानेका कभी मेरा सौभाग्य था, जहाँ, हाय, आज केवल शुष्क रेणुका ही सुदूर-तक फैली हुई है!

यौवन! अरे वैसा यौवन और हुस्न न कभी किसीका था न होगा।

६१

'यदि विधाता फेरीवाला बनकर तेरे द्वारपर स्वप्न बेचने आवे तो, सखि, तू क्या लेगी?'

'कलिन्दजाकी सुदूर फैली हुई रेणुकापर शरत्-पूर्णिमाका चाँद सुधा बरसावे;

'राधिका-रमणके साथ सब व्रजबाला मिलकर रास रचें;

'वृन्दावनके कुञ्ज और यमुना-पुलिन उस नटवरकी मुरली और गोपियोंकी 'किंकिणि-चुरि' ध्वनिसे कूजें;

'विकसित मल्लिकाकी सुगंधसे पवन महक उठे; और

'मेरे नयन-चकोर नंदनंदनकी उस छबिको निर्निमेष निरखें—

'दिलजानी मेरी, बस यही ललित स्वप्न मैं उस विचित्र बिसातीसे मोल लेकर उस नयनाभिराम घनश्यामकी सलोनी सूरतके विरहमें दिनरात तड़प तड़प कर अपने प्राण निछावर करूँगी!'

६२

कालिन्दीके कूलपर मोहन ग्वाल-बाल-सङ्ग बाँसुरी बजा रहे थे मुझे अकेली छोड़कर;

मैं तो रात रूठी थी, पर क्या करती ? अंधी-सी होकर पीछे पीछे चली,—

कुञ्जमें कल कूज रहा था; मुझे देखते ही वे दौड़ पड़े, और मनाते हुए बोले,

" चलो रास रचेंगे । "

मैं क्यों जाऊँ ? बिन बोले ही अपना घड़ा उठा चल दी !

मोहन न रह सके, आखिर मोहन ही तो ठहरे ! ग्वाल-बालों-सहित चुन-चुनकर कंकरियाँ फैंकीं—

मैं झुँझलाकर बैठ गई !

मेरा घड़ा गिर पड़ा, और निर्मल जल ढुलक ढुलक बहने लगा;

मैं चौंकी, जल्दीसे औंधे घड़ेको उठा लिया, हा ! केवल चुल्लूभर पानी उसमें शेष था !

विशाल विश्वमें वह चुल्लूभर पानी ही तो प्रेम है !

६३

मधुमासमें भौंरोंसे ढके हुए गुलाबके रङ्गमें जो ज्ञान, ओज, आनंद, माधुर्य छिपा हुआ है, उसके शतांशको भी, आजतक कवि-खद्योत तो क्या, कविता-कामिनी-कान्त कालिदास भी नहीं वर्णन कर सके हैं;

वर्षाके वैभवपूर्ण आरम्भमें जो जादू हरी घासमें पवन पैदा कर देता है, वह न तो बैजू बावरेकी सितारमें और न तानसेनकी सङ्गीत-कलामें ही पाया जा सकता है;

बाँसुरीके सुरीले छिद्रोंमें जैसे लय मिली रहती है, और वहाँसे मस्त करनेवाला मधुर गान निकलता है, वैसे ही दो प्रेम-मिले हृदय ही इस रहस्यका आस्वादन कर सकते हैं !

६४

सजनी, मेरा प्रेमी बल, पौरुष, और सौन्दर्यमें वृन्दारकोंसा दिव्य है, उसकी आराधना ही मेरे जीवनकी साधना है;

मेरे हियकी थाती !

आह ! जब हरे-भरे वक्षस्थलमें मेरा हृदय-पक्षी पंख फड़फड़ाता है, तब मैं उसे केवल क्षणके लिये देखने जाती हूँ, और मेरी शब्दोच्चारणकी शक्तिको लक़्वा मार जाता है;

जीवनकी साधना एक बार ही समाधिस्थ हो उठती है;

मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गमें एक रहस्यमयी आग धू धू कर सुलग जाती है;

मेरे विशाल लोचन प्रकाश खो बैठते हैं; और मेरे कानोंमें, भगवान जाने, वे क्या क्या गुनगुनाते रहते हैं;

मेरे तन-मन-प्राणमें कदलीकी तरह कँप-कपी होने लगती है, तथापि,

बीहड़ जगत्की यात्रा !

अद्भुत साहस कर मुझे उसकी आराधना वैसे ही करनी पड़ती है, जैसे महोदधिके सौन्दर्य, रहस्य, और अज्ञात द्वीपोंके आविष्कारके लोभसे उत्साहित होकर मल्लाह मृत्यु-क्रीडित

लहरोंका आलिङ्गन करता हुआ भी अपनी यात्रामें आगे ही बढ़ता जाता है !

सजनी, मेरा प्रेमी बल, पौरुष, और सौन्दर्यमें वृन्दारकों-सा दिव्य है !

६५

शैशवमें सौन्दर्य सुप्त रहता है; इसीलिये यौवनका आह्लाद अनश्वर है;

मृत्युमें जीवन निहित रहता है; इसीलिये जराकी कल्पना क्षणभङ्गुर है;

पार्थिव मानवकी विषण्ण आँखोंमें विश्वकी प्रणय-लीलाके स्वप्न बिछे हैं; इसीलिये प्रेमके संकीर्ण कूचेकी योजना अमर है !

शैशवमें सौन्दर्य सुप्त रहता है !

६६

बूढ़े ब्रह्माने मुझे अपनी रसायनशालामें पञ्च महाभूतोंको मिलाकर निर्माण किया और फिर चाकपर चढ़ा, मेरे भाग्यमें न मालूम क्या टेढ़ा-मेढ़ा लिख दिया !

इस मृत्तिकाके क्षणभंगुर पात्रमें अनंत जीवनकी लौ जला उस निर्दयेन मुझे संसार-समुद्रके वक्षस्थलपर पाप और प्रलो-भनोंके आँधी और तूफ़ानसे निरन्तर युद्ध करनेके लिये छोड़ दिया ! कहाँ वह पल-पलमें परिवर्त्तन होनेवाली सुदूर फैली हुई छोरहीन गम्भीर जलराशि, और कहाँ मैं नन्हा-सा दीपक !

किन्तु,

रात्रिके घने अंधकारकी निस्तब्धतामें जब मैं नक्षत्र-मण्डित आकाशको निहारता हूँ तो मेरी तुच्छ संकीर्णता नष्ट हो जाती है, और मैं बन जाता हूँ विराट् !

तारे कहते हैं कि मैं उनसे बिछुड़ गया हूँ, किन्तु, हूँ मैं भी उस अखण्ड आनन्द-ज्योतिर्मयका ही अचल प्रकाश !

निर्भीकतापूर्वक उत्ताल तरङ्गों और वायुके प्रचण्ड थपेड़ोंका सामना करता हुआ, अपने ही चिरन्तन प्रकाशमें मैं चराचरके लक्ष्यकी ओर गतिमान होता हूँ, क्योंकि,—

मेरी यात्राका अन्त, मेरा निर्वाण, तो उस ज्योतिनिरञ्जनकी अनंत लौमें अपनी क्षीण लौ मिलानेसे ही होगा !

६७

चैती पूर्णिमाकी चारु चंद्रिका धरणी-तलपर फैले, उसके पूर्व ही, साँझकी कुन्दभरी बेलामें, वह व्योम-यानपर बैठ कर, मेरे द्वारपर तोरण मारने आयेगा;

मैं नख-शिख तक श्रृंगार कर किख़ाब और जरीके बहुमूल्य वस्त्र पहनूँगी;

और मेरे सीसपर स्वर्ण और मोतियोंका सेहरा सोहेगा, जिसमें श्वेत और रक्त गुलाबकी कलियाँ गुँथी होंगीं;

चिर प्रतीक्षासे प्रेम-विह्वल होकर मैं सुमनोंसे सजी हुई आरती उतार उसका स्वागत करूँगी; वृद्ध पुरोहित गोधूलिमें लग्न साधेगा;

और मेरा प्रेमी भाँवरें भर, उत्कंठासे द्वैतका घूँघट मेरे मुखसे खिसका, मुझे उस अज्ञात लोकको ले जायेगा जहाँसे लौटकर फिर कोई इस जन्म-मरणकी चक्कीमें पिसने नहीं आता!

वर-वधूका वह चिर-मिलन कितना सुन्दर होगा!

६८

तारे एक एक कर बुझ गये, किन्तु रजनीका अवसान न हुआ!

जराके मोहान्ध प्रांगणमें प्राण अटके थे; नश्वर यौवनके

कुत्सित अभिनय-चित्र मृत्युके काले अंचलपर आंकित होक
मानव-हृदयको भयभीत करते थे;

भुलाये हुए भूतकी स्वप्निल आँखोंमें भविष्यकी स्वर्णि
रेखायें दिखती थीं;

और कुटियाका निर्वाणोन्मुख प्रदीप टिमटिमा रहा था,
इसीलिये, तारे बुझ गये किन्तु रजनीका अवसान न हुआ !

६९

मैं अलमस्त पीनेवाली हूँ, साक़ी, मुझे भर भर जाम पिला,
और खूब पिला !

क्या हुआ जो तेरे तरल पानीका मोल चुकानेके लिये
मेरी गाँठमें रजत्के टुकड़े नहीं हैं !

क्या हुआ जो मेरे अस्थि-पञ्जर-मात्र कंकालमें तुझे रिझानेके
योग्य सौन्दर्य नहीं है !

क्या हुआ जो मेरे रतनारे निस्तेज नेत्रोंमें तुझे अपनी
ओर आकर्षण करनेकी शक्ति नहीं है !

फिर भी मुझमें पीनेकी अटूट चाह है, और प्रेमके मर्मको
पहचानती हूँ ।

मैं अलमस्त पीनेवाली हूँ, साक़ी, मुझे पिला, खूब पिला !

७०

सुनो तो !

तुम्हारी तालपर तो पशु-पक्षी, सुन्दर पर्वतमालायें, और सदैव भ्रमण करनेवाले नक्षत्र, मनुष्य और देवता, नाचते हैं;

तुम ही तो सुनसान फेनिल समुद्र और पूर्णेन्दुमें अद्भुत भाव भरते हो;

ओह अमरधन !

यदि तुम मेरे स्नेह-कोमल पर निर्बल हृदयको, जो प्रेमकी धड़कनसे घुट रहा है, यथेष्ट बल और सांत्वना प्रदान करोगे

तो, तारनहार,

उस दिन विधाता अपना कालचक्र घुमाना छोड़कर क्षण-भरके लिये कह उठेगा,

‘ देखो, मरणशील मानवने देखते ही देखते प्रेमका अनमोल अमरत्व प्राप्त किया ! ’

देवता, मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगे ?

७१

बनजारे,

पार्थिव विश्वकी विपुल भावनायें जाग उठी हैं, तू क्यों बेख़बर सोता है ?

मेरा शाश्वत प्रणय जीवनकी ज्योत्स्नामें घुलकर अमर हो गया है;

मेरे कवि-हृदयकी विषण्ण विरक्तिसे ऊबकर प्रकृति मदिरासे भिन्न हो गई है;

तेरी चितवनोंमें समाधिस्थ सङ्गीत-राशिकी आँखें स्मित हास्यसे चम-चमा उठी हैं;

और मैं अपना जीर्ण कंकाल यौवनमें परिणत कर तेरी चिरप्रतीक्षा कर रही हूँ !

बनजारे, पार्थिव विश्वकी विपुल भावनायें जाग उठी हैं, अब तू क्यों बेख़बर सोता है ?

७२

आज रण-विजयी घर लौट रहा है, उसे बधाने जाना है ! सुभगे, चल तेरी श्याम-वर्ण वेणीको सुगंधसे सींचकर पुष्पोंसे बाँध दूँ;

गज-मुक्तासे तेरा श्रृंगार कर दूँ ;

फिर तेरी आतुर निर्निमेष आँखोंमें सुरमा सारकर उनकी शोभा बढ़ा दूँ;

और तेरे लोने ललाटपर सुरंग-बिन्दु लगा उसे विजयोद्भासित हर्षसे दमका दूँ !

चाक कुमारी उसे बधाने कोरा कलश लाई है; और मालिन मकरंद पुष्पोंकी माला !

उठ, सखीरी, मोतियोंसे सुवर्ण थाल सजा ले;

इत्रभरी आरतीमें लौनी लौ रख दे;

आनंदाश्रुसे गङ्गा-जली भर ले, और

षट-पूजाके प्रेमरारे साजको गूँथी हुई वेणी-आलयमें रख ले ।

आज रण-विजयी घर लौट रहा है, उसे बधाने जाना है !

७३

प्रभातकी बाल्यावस्थामें, जब मेरी अज्ञात आँखें शैशवके स्वप्न देख रही थीं, तब तुम भव्य भिखारी बन, मन्दार पुष्पोंका साज पहन, मेरी कुटियामें आये, और मुझे क्या दे गये ?

——मुरलीवाले,

प्रभातकी किशोरावस्थामें जब मेरे आशा-उन्मीलित नेत्र अलभ्य यौवनके स्वप्न देख रहे थे, तब तुम मोर-मुकुट पीताम्बर पहनकर आये, और मेरे मुग्ध हृदयमें क्या भर गये ?

——नटवर,

प्रभातकी जर्जर यौवनावस्थामें जब मेरे वैशाखी नयन-निर्झर किसी तक सन्देश पहुँचानेमें व्यस्त थे,——बेख़बर अपनी फकीरीमें मस्त थे, तब तुम मग्न-भग्न-हृदय संन्यासीकी भाँति आये, और मेरा सब-कुछ चुराकर वह कौन-सा चक्र चला गये ?

७४

प्रेमी,

कम्पित कदलीसे मैं ज्यादा कम्पिता हूँ !

प्रेमने मुझे सरिताके स्निग्ध जल-सा तरल बना दिया है;

मुरलीमनोहर,

तेरी मुरलीकी ध्वनिका प्रभाव मुझपर गिरि-पवन-सा पड़ता है और,

मेरा पल-पलमें परिवर्तित होनेवाला हृदय सम्पूर्ण ध्यानसे आकर्षित हो उस सङ्गीत-लहरीको सुनता है;

विरही,

तेरी वेदना-भरी आह अथवा खोई प्रतिध्वनि सुन मैं वैसे ही रोमाञ्चित हो जाती हूँ जैसे पूर्णेन्दुमें समुद्रका ज्वार उसे चूमने छटपटाता है !

७५

—बस, अब मुझे सोने दो;

प्रभात होते ही जुदाईकी घड़ी निश्चित मृत्युकी तरह आवेगी, और हमको सदाके लिये जुदा कर देगी !

वसंतका अंत नहीं हुआ;

यौवनके आँसू न सूखे;

पाप-मोचनके लिये सरिताके शुचि नीरकी उपयोगिता ज्योंकी त्यों है;

प्रकृति हरी है;

सन्ध्यामें शांतिका आवास है, और प्रभातमें जीवनको पालनेकी क्षणभंगुर विडम्बना,—

इन सबसे छूट कर मुझे सो लेने दो, जुदाईकी मृत्यु-निश्चित घड़ी हाथ बाँधे खड़ी है !

७८

सजनी, अरेरे !—कल भी हृदय-हार न आये;

देख तो, यह मोगरेका हार यों ही सूख रहा है;

गुलाबका इत्र और मृग-मद-मिश्रित चन्दन मेरे सूने शयन-कक्षमें व्यर्थ ही अपनी सुरभि फैला रहे हैं,—

क्या आज भी मेरा चितचोर न आयेगा ? मेरा जी अन-मना हो रहा है;

मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग फड़क रहे हैं;

और मैं छतपर बैठे कागके उड़नेका आसरा देख रही हूँ !

७७

घूँघटका पट खोल दे, मधुबाले !

मैं इस स्वर्ण-घटमें भरी हुई महँगी वारुणीका मोल करने नहीं आया हूँ, क्योंकि इससे मेरी तृप्ति न होगी;

तेरे मयखानेमें झूमते हुए बेसुध पियक्कड़ोंकी रंगरलियाँ देखनेका भी मेरा मन नहीं होता क्योंकि वह मेरे एकांकी नाटकका दृश्य पूर्ण नहीं करतीं;

तेरी समवयस्का मधुनायिकाओंकी मधुर पायल-ध्वनि तथा हाथीदाँतकी चूड़ियोंकी खनखनाहट मेरा ध्यान आकर्षित नहीं करती क्यों कि मेरे प्रेमका ध्येय बाह्याडम्बरोंसे परे है;

तेरी रङ्गशालामें जमी हुई महफिलका मदभरा राग सुनकर मुझमें रोमाञ्च नहीं होता; क्योंकि,

मैं तो केवल तेरे चन्द्र-मुखकी सुधा पीने आया हूँ, जिसे पीकर पीना सदाके लिये भूल जाऊँगा !

घूँघटका पट खोल दे, मधुबाले !

७८

ओ जल्लाद !

इस रेशमी फाँसीके फंदेको मेरी झुकी हुई गर्दनमें जकड़ देनेके पश्चात् मेरी तड़पती हुई लाशपरका लाल कफ़न उठाकर उस अदृश्य ईशपुत्रका आह्वान करना, जो विश्व-हितके लिये शूलीपर चढ़कर भी अपनी सच्चाईका सुबूत देने जी उठा था;

अमावास्याके घने अंधकारमें जब वह श्वेत चद्दरसे ढाँपकर मुझे अपने कंधेपर रख दफनाने ले जावे तब उससे कहना, ‘ उस धूलके गुब्बारपर चिराग़ जलाकर बैठे और मुझे वह अंतिम कलमा सुना जाय जिसको याद कर मैं तेरे मिलनेके लिये क़यामतकी दुआ न करूँ ! ’

७९

विश्व जब घोर पाप-पंकमें लिप्त हो स्वार्थको स्वतंत्रताका नाम दे रक्तकी नदियाँ बहावे; और धर्मकी आड़में अत्याचारका दारुण अभिनय हो,

तब तुम प्रकाशकी प्रच्छन्न किरण बनकर आना, और हमें पावनताका शुचि पाठ पढ़ा देना;

जब भूतलपर सर्वत्र अशांति फैले, और महामारीके भयंकर प्रकोपसे शेषासन डोल उठे,

तब तुम स्वातीकी नन्ही बूँदें बन कर आना,

और पपीहेकी तरह कभी न शांत होनेवाली चिर आशा उत्पन्न कर जाना;

जब ऊधोके निर्गुण उपदेशसे गोपिकायें ऊब जायें, और प्रेमको ईश्वरका सगुण रूप न मानकर उसकी उपेक्षा करें तब

तुम घनश्याम बनकर आना, और एक ही भाव-भंगीमें उस सनातन सत्यका प्रकाश कर जाना !

८०

यौवनकी प्रथम सन्ध्यामें ही तुम इस आहों-सनी काल कोठरीमें कैद हो गये, फिर भी, तुम सदा हँस-मुख रहते हो, यह देखकर मैं निश्चेष्ट हो जाती हूँ !

इस कारागृहमें वह कौन-सा सुख है जो तुम्हें मस्त बनाये हुए है ?

शायद तुम स्वतंत्रताके संस्कृत जीवनका धूमिल चित्र बनाते हो और कल्पनाके नयनसे उसे निहार वर्त्तमानको भूल जाते हो !

तुम मेरे बन्दी होकर भी कुन्द-से कान्ति भरे हो, और मैं,

राजरानी होकर भी तुम्हारे कृपा-कटाक्षके लिये तिल तिल मर रही हूँ !

काश ! मैं तुम जैसे अजेय बन्दीसे स्वयं बँध सकती !

८१

नौसिखिये,

बिन बजी वीणाके इन तारोंको अस्त-व्यस्त न करो;

काल-विटपको फूलते देखकर अब तक मैं निस्तब्ध थी, अनजान थी, और अपने मूर्च्छित वैकल्यको इसी वीणामें रमा प्रणयकी लीलाओंसे थी उदासीन;

तुम्हारे तार-प्रकम्पनमें सधा हुआ लय-लालित्य नहीं है, इन्हें न छूओ, क्योंकि,

ये तो उसी प्रीतमके कोमल-कर-स्पर्शसे मधुर गुञ्जन करेंगे जो इन्हें बजा,

मेरे सुप्त प्रणयको जाग्रत कर,

उसका रस लेगा !

नौसिखिये, वीणाके इन तारोंको न छेड़ो !

८२

जब काला स्मशान मेरी चितासे जल उठे, तब, ओ निर्दयी, मेरे लिये केवल इतना ही कहना—

'प्रेम ही उसका नेम था, प्रेम ही उसका ज्ञान था, प्रेम ही उसकी शान थी, प्रेम ही उसका ध्यान था, प्रेम ही उसका पांडित्य, और प्रेम ही उसका सर्वस्व था!'

जब उलझे हुए संसारमें कोई दीवाना किसी जटिल समस्याके सुलझानेका प्रयत्न करे, तब, ओ ज़ालिम, मेरे लिये इतना कह देना,—'प्रेमके गूढ़ रहस्यको उसने अंततक निबाहा, बिना किसी हीले-हवालेके पतंगकी भाँति दीपकपर बलि बलि गई, प्रेमकी वेदीपर प्रेमकी विजयको निश्चित समझ शहीद बन बैठी; और,

'टूटे स्वप्नकी सूनी संध्यामें भी आत्म-बलिदानपर एक क्षणके लिये भी सन्देह न किया!'

जब उद्विग्न वसुधाकी बेबसीको कोई बेताब लिखने बैठे, तब, ओ गायक, मेरे लिये इतना तो ज़रूर कहना— 'दुनिया उसपर व्यंगकी हँसी हँसे, उसकी खिल्ली उड़ावे, किन्तु, वह उसका क्या बिगाड़ सकती है? संसारमें, जहाँ दिव्यता ही प्राण है,—वहाँ भी, यदि उसपर कुठार बरसें,

तो भी वह क्या प्रत्युत्तर दे सकती है ? सिवा पागल होकर हँसनेके उसे क्या सूझ सकता है ? अथवा,

'इस नेमसे अबोध संसारमें साधुताकी चिता धधकानेके अतिरिक्त उस पगलीके विदग्ध जीवनकी और क्या साध हो सकती है ?'

जब काला स्मशान मेरी चितासे जल उठे, तब, ओ निर्दयी, मेरे लिये इतना तो कह देना !

८३

तुमसे बिछुड़ते मुझे इतना क्षोभ नहीं हुआ जितना मिलनकी मादक घड़ियोंमें;

तुम्हारे प्रथम आलिङ्गनमें ही मुझे इस वेदनाका आभास हो गया था; इसलिये,

मेरे इन आँसुओंकी उपेक्षा न करो, देव,—ये तो विश्वकी जघन्य अनुभूतियाँ हैं जो घबराकर आँखोंकी राह ढुलक पड़ी हैं,

न कि शोक-समुद्रके पोले बुद-बुदे, जो तेरे बिछुड़नकी विषम ठेस खाकर बिखर पड़े हों !

८४

माँ,

कितनी कठिनाइयोंको पारकर आज मैं तेरे सिंह-द्वारतक पहुँच सकी हूँ;

रात आधीसे ज्यादा बीत चुकी है,—और शीघ्र ही तेरा पुजारी तुझे जगानेके लिये मन्दिरमें प्रवेश कर शंख-नाद करेगा,—

और मुझे यहाँ देख न मालूम क्या क्या कहेगा ?

सूने अशेषके मानसपर वह काण्ड मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है !

तू तो खून-भरे खप्परको तलछटतक पीकर झूम उठेगी, और तेरे भक्त उस दिव्य कटाक्षकी छायाके लिये छट-पटाकर प्राण दे देंगे !

वरदे, इस परित्यक्ताको उसकी अचल भक्तिसे रीझ अपना अम्लान चिर-सौन्दर्य प्रदान कर, जिससे वह ठोकर मारने-वालेके वज्र-कठोर हृदयपर विजय पा सके !

८५

यदि मैं स्वर्ग और भूतलका अधीश्वर होता तो वसंतकी समस्त सुषमा छीनकर उषा और सन्ध्यासे तुम्हारा शृङ्गार करवाता;

रत्नाकरके अनमोल मोतियोंसे तुम्हारी माँग भरता;

चाँद और तारे तुम्हारे केश-व्यालोंमें गूँथ देता, अप्सराओंको तुम्हारी परिचारिकायें नियुक्त करता जो हाथ बाँधे तुम्हारे इशारोंपर नाचतीं;

चराचरका रहस्योद्‍घाटन कर तुम्हारा मनोरञ्जन करता;

और विश्वका सारा वैभव तुम्हारे चरणोंपर चढ़ा अपनेको धन्य मानता; किन्तु,

मुझ ग़रीबके पास, मेरे टूटे दिलके दिलरुबाके सिवा है ही क्या जिसके तारोंको अपने स्वप्निल गीतोंसे प्रकम्पित कर, मैं तुम्हारी अमर कीर्ति दिग्-दिगन्तरमें गाता फिरता हूँ!

८६

मैं उस मयूरके नयनोंका तप्त नीर नहीं हूँ जिसे पीकर मयूरी हुलसी हुलसी फिरती है;

मैं उस हृष्ट-पुष्ट अज-शावकका रक्त नहीं हूँ जिसके सिञ्चनसे अमर-वल्लरी हरी हो जाती है;

मैं उस प्याली-भरी वारुणीकी प्रथम हिल्लोर नहीं हूँ जो पीनेवालेको अलमस्त बना देती है;

मैं उस नवोढ़ाकी भ्रांति नहीं हूँ जिसे भाँपकर नायक रीझ उठता है;

मैं उस प्रियतमका अछूता सौन्दर्य नहीं हूँ जिसे निरखकर विश्व विमोहित हो जाता है;

मैं तो केवल उस भिखारिनका ममत्व-भरा भाव हूँ जिसे पढ़कर चराचर अपना रहस्य सुलझा लेता है !

८७

अपने प्रेमीके लिये मैंने एक मन्दिर और वेदी बनाई; उसका प्रत्येक पत्थर प्रेममय विचार था। उसकी दीवालोंको सुसज्जित करनेके लिये मैंने स्वर्ग और भूतलपर, दूरदूरतक, मञ्जुल कल्पनाओंकी खोज की।

दिव्य कर्म और दीप्त शब्दोंने अखण्ड विश्वास और पूर्ण प्रेमके साथ मिलकर ही उस मन्दिरका भव्य भवन निर्मित किया था।

प्रेमका वह मन्दिर,—

हाँ, बड़ी कठिनाईसे वह बना था!

परन्तु—?

उसमें निवास करने कौन आया? वह मुखड़ा नहीं जिसकी मैंने यावज्जीवन कल्पना की थी; वे अद्भुत आँखें ही नहीं जिनकी सुखदा सुधामयी रुचिरतासे मैं जन्मजन्मान्तरसे खूब परिचित हूँ!

प्रियतमको न देख मैं व्याकुल हुई!

'देवता! दया कर दयानिधान!'

एक प्रतिघोष उठा,—और निखरे हास्यमें मैंने सुना—

'मैं दया हूँ!'

८८

तेरे सुकुमार नव हृदय-पौधेके निखरते सुमनको मैंने खिलते हुए देखा;

मेरा अपलक आकर्षण उत्कंठाकी सीमा पार कर चुका था;

वायुके मंद मंद झोंकोंसे सुगंधका अनुभव हुआ;

—सौन्दर्य निरखनेकी आतुर पिपासा खींचकर निकट ले गई।

अलसाये यौवनने प्रस्फुटित यौवनसे नयन मिलाये;

प्रकृतिने व्यंगसे कहा, 'वेणीमें गूँथ लो, पूर्णिमाकी गुलाबी रजनीमें मोहनको रिझाकर मुरली सुनानेकी याचना करना।'

विवश थी, फिर भी इस हलके व्यंगको न सह सकी;

उलझी अलकोंको, घूँघट निकाल, आँसुओंसे तर करने लगी!

कुमुदको बाहु-पाशमें बाँधे कुमुदिनीने प्रवेश किया;

मैंने देखा, और एकाकी प्रियतमकी स्मृतिसे सिहर उठी;

—असहाय अबला, हाय! क्या करती? फूलके वेषको चुराया और चुपकेसे गोधूलिमें मिल गई!

प्रियतम मुझे खोजने निकले;

परन्तु,

मैं स्वयं उन्हें खोज रही हूँ!

८९

दिव्य,

क्या हुआ यदि मैं तुमपर मन्दार न बरसा सकी ?

पर आज तो तुम्हें इन सूखे बेल-पत्रोंसे ही रीझ उठना चाहिये; तुममें और मुझमें तो घना अन्तर है;

तुम तो भरी प्यालीको ठुकरानेकी क्षमता रखते हो, और मैं,—

बूँद बूँद पीनेके लिये तड़प तड़प कर बेगानी फिरती हूँ !

इसीलिये कहती हूँ, क्या हुआ यदि मैंने तुम्हारे पथमें बिछे फूलोंको बटोरकर काँटे बिछाये ?

तुममें और मुझमें तो घना अन्तर है !

१०

सदैव तुम मुझे पिलाकर पागलसे झूमते थे, परन्तु,—

आज उषःकालसे ही ढालते ढालते अवसान कर दिया;

सलोनी सुराही रिक्त होनेसे विरक्ताकी भाँति तुम्हारे अध-खुले नयनोंको निहार रही है;

तुम्हारे शुष्क अधरोंसे वह अधीर अतृप्ता, निराशाका उच्छ्वास बनकर, निकलती है और उस रिक्त सुराहीमें आहकी मदिरा बन समा जाती है;

परन्तु,

तुम न मालूम कौन-सी खोई हुई मोहिनीको पुनः खींच लानेका सतत प्रयत्न कर रहे हो !

सफल न होनेपर सिर धुनते हो; फिर, भावहीन भौंहोंको टेढ़ी कर, मेरी प्यालीमें बची हुई बूँदोंको निर्निमेष नेत्रोंसे देखने लगते हो, तब, कदाचित् ,

तुम मेरे साक़ी होना भूल जाते हो, और सहसा अपनी आँखोंसे मेरा नशा उतार कर वे बूँदें प्रियतमको पिला, उसे बदहोश बना देते हो;

धन्य साक़ी ! तुम पिला-पिलाकर प्रसन्न होते हो, और बिलमाये प्रेमियोंको मधुर-मुग्ध बनाकर प्रणय और प्रेमका दान देते हो;

रस-भीने साक़ी !

वह सुन्दर था, सुशील था, और था रसिक;

उसके अल्हड़पनमें सरलता थी, और उसके यौवनके उन्मादमें बाल-सुलभ चापल्य;

सरयूके स्वच्छ जलसे क्यारियाँ सींचता, चमनमें चहल-कदमी करता, फूल तोड़ता, सूँघता, मसलता और धूलि-धूसरित कर देता;

उसके इस कौतुकसे सुकुमार नवीन पौधे सिहर जाते;

वह धीरेसे आता, और चुपकेसे चूम लेता!

मैं उधर देखती,—वह झेंपता, झिझककर और मुसकराकर रह जाता!

मैं सरस थी, सलोनी थी, और थी मुग्धा;

मेरी प्रकृतिमें संध्याका अलसाया सौन्दर्य था, और गतिमें छिपी हुई मत्तगयंद-सी मादकता;

मृग-छौना भागता, मैं पकड़ती,

वह भयभीत होता, मैं मार्ग रोक लेती;

फिर, मैं बिखरी हुई अधखिली कलियाँ आँचलमें भर लाती, और सावधानीसे माला पिरोती;

वह देखता, परन्तु तरंगिणीके तटपर जाकर ध्यान-मग्न हो जाता;

मैं आहिस्तासे जाती और चुपकेसे माला पहना देती;

वह आँखोंमें रस भरकर देखता,—मैं झेंपती, झुँझला जाती, और सहमती!

सन्ध्या-सुन्दरीको श्यामांबर अंधकार अपने अंकमें ढक लेता,

वह आगे बढ़ता, मैं पीछे पीछे चलती;

अँधेरा घना हो जाता, स्यार चीखते, मैं चीत्कार कर उसका हाथ पकड़ लेती;

आँखें मिलतीं,—एकसे ज्योति निकलती और दूसरेमें समा जाती;

हम झेंपते, झिझकते और एक हो जाते!!

९२

आज तो मैं प्रेमीसे झगड़ गई;

वर्षोंके विनिमयसे मैंने तेरी सेवा की, शुश्रूषा की,--हृदय दहल उठा,—

हा ! उसका क्या प्रतिकार मिला ?

जीवनके मोलसे की हुई आराधनाका प्रतिकार क्या था ?

मेरे प्रति तेरी घोर अवहेलना, और भयंकर अन्याय !

परन्तु,—

क्या मैं अपने स्वत्वोंकी आशा छोड़ दूँ ? प्रेमने आँखोंमें अमी उड़ेलते हुए कहा,—

'क्या यह कली सराहनाके लिये खिली है ?

'क्या सूर्यका प्रकाश तेरी पूजा और प्रार्थनाको, अर्घ्य और आराधनाको, स्वीकार करनेके लिये महोदधि और वसुधापर फैलता है ?'

—मैं कुहुक उठी,—

'मुझे अपने अंतस्तलमें स्थान दो, नाथ,

'मुझे वहाँ दिनमणिकी भाँति द्युतिमय होने दो, गुलाब-सी खिलने दो !'

प्रेम ही प्रेमका प्रतिकार है !

९३

मरनेके पूर्व मृत्यु भयावह थी, किन्तु अब ?

अब तो वह जीवन-माधवीसे भी अधिक मधुरिमापूर्ण है !

इस नश्वर जगत्से उसने मेरा अस्तित्व मिटा मुझे गुलाबी वसंत-पवन-सा मुक्त और स्वच्छंद बना दिया है, जो कोकिलकी कण्ठ-ध्वनि सुनकर आम्रकी हरित मञ्जरीमें मधुर प्रकम्पन उत्पन्न करता है;

उस महान् परिवर्त्तनने मुझे पञ्चत्वमें मिला, विचार-वैषम्यके निर्वाध व्यवधानोंसे मेरा पिण्ड छुड़ा, मुझे अधिक पारदर्शी और प्रत्यक्ष बना दिया है;

क्योंकि, प्रियतमका असाध्य प्रेम अब मेरे लिये सधी हुई पूजा,

और उनकी अभिसन्धि ही मेरे निसर्ग मरणका साफल्य है !

—इसीलिए तो कहती हूँ, मृत्यु अब जीवन-माधवीसे भी अधिक मधुरिमापूर्ण है !

९४

यारे,

प्रेमकी पीड़ा मिटाना चाहे तो सो जा, सो जा! दर्दे इश्क ज़िन्दगीसे हटाना चाहे तो सो जा, सो जा!

रात्रिके मृदुल अंधकारमें समुद्रकी लहरें तेरे चरण सुहलायेंगीं।

पश्चिमी वायु लोरियाँ गा-गाकर तुझे सुनायेगी, और,—

नक्षत्र तुझे अपना समझ अनंत शांति प्रदान करेंगे;

प्यारे,

उस यौवन-मद-मातीके चितवनकी मधुर कसक मिटाना चाहे,

अपने हृदयके गम्भीर घावपर भूलका मरहम लगाना चाहे, तो सो जा, सो जा!

बिस्मिल,

प्रेमकी तड़प मिटाना चाहे तो मर जा, मर जा!

दर्दे उल्फत ज़िन्दगीसे हटाना चाहे तो मर जा, मर जा!

नयन मूँदकर गुलाब और कमलके पत्तोंकी कोमल-शय्यापर चन्दनका लेप लगा सोनेसे तो मरना हज़ार बार भला;

कवियोंके व्यथाभरे गीत, शहीदोंकी अंतस्तलसे निकली हुई दुआयें, और

मृत प्रेमियोंके सुरभित उच्छ्वास मृत्युके रहस्यमय प्रदेशमें प्रणय-स्वप्न सजीव कर उन्हें चरितार्थ करनेमें तेरे सहायक होंगे !

प्यारे, इश्ककी आगको बुझाना चाहे, उल्फतके घावको पुरवाना चाहे तो मर जा, मर जा ! !

९५

तुझे देखनेवाली अँखियाँ आनंदसे ओत-प्रोत हैं, और तेरी मृदुल वाणी सुननेवाले कर्ण धन्य हैं, क्योंकि,—

ऐ मधुश्याम,

तेरे सन्निकट रहकर कोई भी उस असीम, चिरन्तन आनंदसे वंचित नहीं रह सकता, जिसके घनीभूत आलोकसे विश्व जन्मा है, जिसके आभामय यानपर संसार स्थित है, और जिसकी जाज्वल्य ज्योतिमें वसुधा लीन होती है !

परन्तु,—जीवन-प्राण,

संसार मुझ अभागिनीके लिये कितना भयावह, और अंधकारपूर्ण है ?

क्या मेरी वेदनाका कोई प्रतिघोष नहीं ? क्या मेरे लव-लीन लोचन-वारिको झेलनेके लिये कोई अमर अंचल नहीं ?

९८

ललिता,

मुझ पतिताकी पर्ण-कुटियामें तो आज मोहन मुरली बजाने आये;

मैं पुलकित हो उठी; मल मल कर पदाम्बुज पखारे, और उस अमृतके अंतिम बूँद तकको पी गई;

काठके कठौतेको चबा न सकी,—यही मेरा दुर्भाग्य था!

वे मुखरित हो उठे—

'क्या लोगी,—मुग्धे?'

'कुछ नहीं।'

'कहो भी,—मुक्ति चाहिये?'

'नहीं।'

'स्वर्ग-सुख, योग, वा सिद्धि?'

मैं उन चरणोंको हृत्-पटलपर अंकित कर बोल उठी—'उन सबको क्या करूँ? मुझे तो भव-भवमें ये चरण चाहिये!"

९७

दुपहरीकी अलसायी घड़ियोंमें, निस्तेज लेटी हुई जब मैं

कालान्तरमें उत्पन्न होनेवाले कवि-कोविदकी अलक्ष्य कल्पनातक स्वप्न-यानमें बैठकर पहुँच जाती हूँ, तब मेरे सहज उत्सर्गमें सहसा दारुण विलोड़न होती है !

मेरा शब्द-विन्यास ही उसका विश्व आलोकित करेगा, और

कालके अनंत कूचेमें वह मेरी स्मृतिमें सिर धुन-धुनकर बौरा जायेगा;

साक़ी, सुरा और मैं न होंगे; किन्तु, मेरा अथक निर्द्वन्द प्रेम मेरे सँवारे शब्दोंमें चित्रित होगा !

जनक-फुलवारीमें सीतारामके प्रथम दर्शनकी प्रेम-लीला लोप हो गई;

द्वापरकी अयोध्याका अस्तित्व न रहा;

रावणकी स्वर्ण-लंका भस्मीभूत हुई,

किन्तु, तुलसीके अमर वाग्विलासमें वे ज्योंकी त्यों आज भी सजीव हैं !

भविष्यके गर्भमें छिपे हुए कविरत्न, तू मेरी स्मृतिमें विकल हो,

उसके पूर्व ही मैं तेरा स्वागत करती हूँ, सादर अभि-वादन करती हूँ;

स्वर्ण युगके भावी निर्माता, मेरे अनंत प्रणाम स्वीकार कर;

मेरी शब्द-ज्योति ही तेरे अंधे विश्वको आलोकित करेगी!!

९८

आशा—अमर धन !

गम्भीर विश्व-सागरमें गोते लगाकर अनमोल मोती निकालनेके लिये मैंने तेरे ही आसरे कमर कसी!

आकाशमें झूमते तारे मेरे सूने हृदयके स्मृति-स्तम्भ हैं;

वे रँग-भीने बादल, मेरे आँसुओंके अथाह निधि बन,

तेरे तापोंको शांत करने, तेरे ही द्वारपर बरसने, आ रहे हैं;

साक़ी,

भग्न हृदयका उपहार, भला, कैसा हो?

मृत्युकी मोहमयी रागिनीसे प्रकम्पित हो मेरा कफ़न उड़ कर तुझे सुहलाये;

देवता,

उस काली घड़ीमें भी मुझे तेरा ध्यान रहे, कि उस पार, कोई मेरे लिये खड़ा है!

आशा—अमर धन !

९९

परदेसी,

इस अनंत गमनके लिये ही तुम्हारा आगमन हुआ था;

दीर्घकाल तक विचार करते रहनेपर भी मैं इस महा प्रयाणके समय, द्वारकी देहली तक भी तुम्हारा साथ न दे सकी, पथ संकीर्ण और दुर्गम था !

मेरे प्राण तुम्हारे रोम-रोममें रम रहे थे, और मैंने उस महीन जालको काटनेका कभी प्रयत्न भी न किया,

क्यों कि, मैंने समझा, जीवन अनंत है, पाप एक अज्ञात भय,

और रौरवकी भीषण यंत्रणा केवल कपोल-कल्पित सत्य है !

परदेसी, इस अनंत गमनके लिये ही तुम्हारा आगमन हुआ था !

१००

ईदका चाँद उगते ही मस्जिदकी मीनारसे रोज़ेकी अज़ान देनेवाले मुल्ला,

जब तेरी बाँगको सुनकर आस्मानसे अल्लाह उतर आये तब इतना तो कह देना,

'सुबहके स्फूर्तिदायक समयसे लगाकर मध्याह्नकी भूली हुई घड़ियों तक वह यौवनमें डूबी हुई आसवका अक्षत पात्र लिये अचल खड़ी रहेगी;

'और मानव-हृदयके पावन प्रेमकी अधिष्ठात्री हो जायगी;

'किन्तु, सन्ध्याकी मृत्युभरी बेलामें क्लान्त होकर जीर्ण हो जाय, विपत्तिके मेघ उसे चारों तरफसे घेरकर गम्भीर गर्जना करें, विहङ्ग अपने नीड़ोंमें उड़ चलें, कृषि-बालाके श्रम-बिन्दु सूख जायें, दिन-भरके परेशान पथिक विश्रांतिकी खोजमें भटकने लगें,—तब,—

'अपना हृदय-नीड़

'उसके लिये सुरक्षित रखना, जहाँ वह रात आरामसे बसर कर सके!'

अंधे पक्षी भी संध्याके अंधकारमें तो बेखटके अपने अपने घोंसलोंमें ही सीधे प्रवेश करते हैं,—बूढ़े मुल्ला!!

१०१

मेरे जीवन-विटपसे वर्ष-प्रसून एक एक कर झड़ रहे हैं;

शीघ्र ही वह तो नीरस, शुष्क, कटीला डण्ठल रह जायगा;

जिसे जरामें मृत्युका बर्फीला तूफ़ान खूब झकझोरेगा;

वसंतमें जब कोयलकी कूज सुन हरियाली धूलके अवगुण्ठनसे झाँकेगी;

और सूखे तरुओंकी डालियाँ कोमल किसलय और नवल सुमनोंसे खिल उठेंगीं, तब,—

क्या मेरे जीवन-विटपमें भी वसंत फिरसे नवयौवनकी बहार न लायेगा?

१०२

विश्व-जीवनकी सामूहिक विषमता देखकर, मैं अपना जीवन क्यों नष्ट करूँ ?

कहाँ मानवी दुर्बलतायें, और कहाँ मेरा ईश्वरत्व ?

मेरे प्रकाशसे ही सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र चमकते हैं;

मेरी प्रेरणासे ही पवन चलता है, और मेरी तालपर ही नटराज जीवन और मृत्युका भीषण ताण्डव रचते हैं;

मेरे क्रोधसे ही प्रकृति रौद्ररूप धारण कर प्रलय मचा देती है,

और, फिर मेरे ही संकेतपर नवीन सृष्टिका सृजन होता है;

मैं ही कवियोंकी कल्पना, और अखिल विश्वका सौन्दर्य हूँ !

विश्व-जीवनकी सामूहिक विषमता देखकर मैं अपना जीवन क्यों नष्ट करूँ ?

१०३

सनम,

जी चाहे तो मेरी यादमें टुक रो लेना;

मृत्यु जब मेरी जीवन-माधवीकी स्वर्णिम प्यालीको रिक्तकर मुझे मिट्टीमें मिला दे, तब तुम भूलकर भी मेरी ख़ाकपर श्वेत सङ्गमरमरका दूसरा ताज न बनवाना;

मृत्तिकाके उस मृदुल ढेरपर तुम सुदूर शिराज़के गुलाब, जिनके सलज यौवनसे मस्त हो हाफिज़ने सैकड़ों गज़लें कह डालीं, और सलोने सरोके मञ्जुल वृक्ष लगा नवीन स्वर्गोद्यानकी रचना न करना जिसमें स्थान-स्थानपर निर्मल जलकी नहरें बहें और फव्वारे छूट-छूटकर फलकको छूयें;

जी चाहे तो मेरी यादमें दो आँसू बहा देना!

नीले आसमानके नीचे, जिसमें आकाश-गङ्गा बहती है, जहाँ नक्षत्र क्षणिक रजत प्रकाश छोड़कर लोप हो जाते हैं, और बादल पल-पलमें नया अभिनय करते हैं,—

मेरे धवल-तुषार-वक्षपर तो शबनम-गीली हरी घास ही बस होगी;

कोकिलकी कूजसे मैं न चौंकूँगी,

न वासंती मलयानिलके स्पर्शसे प्रकम्पित होऊँगी,

न ऊषाका आलोक, न सन्ध्याका सौन्दर्य, मेरी तुरबतके धूमिल प्रकाशको उज्ज्वल बना सकेंगे,

परन्तु, अगर मैं तुम्हारे प्रेमकी स्मृतिको बिसार दूँ तो हश्र हो जाय, और क़यामतकी घड़ी नजदीक खिंच आय;

मैं तुम्हारे पार्श्वमें न होऊँगी, किन्तु विश्वका विमुग्धकारी सौन्दर्य तुम्हें लुभायेगा,

और तुम फिरसे रूप और सुराके भक्त बन जाओगे,

ऋतुयें तुम्हारा दिल बहलायेंगीं, चन्द्रिका और बाँसुरीकी रागिनी तुम्हें भोग-विलासकी ओर आकर्षित करेगी,—

पर, मेरी मृत्युसे भग्न तुम्हारे हृदयमें जीवन फिरसे प्रथम-प्रणयके सुरभित आनंदोच्छ्वासकी अनंत माधुरी तो कदापि न भर सकेगा !

सनम,

साँझके झुटपुटे समयमें जी चाहे तो मेरी मजारपर बैठकर टुक रो लेना !

१०४

भटियारिन,

मेरे बिछोहमें आँसू मत बहा, मत बहा,

विधनाको मनमानी करने दे; मेरी प्रतीक्षामें पलक न बिछा, न बिछा,

मैं तो अब इस मार्गसे न लौटूँगा, तेरे हृदयके कपाट मूँद ले, आफ़ताब डूब रहा है;

पवन पतझड़के पीले पत्तोंमें मरमर-ध्वनि कर रहा है, और यम और यमी इस प्रशांत घड़ीमें भूतलपर विचर रहे हैं !

मेरी चिन्तामें मत घुल, मत घुल, मैं तो अब इस सरायमें फिर कभी विश्रांति न लूँगा;

जुदाईके गम-ऊँडे़ उच्छ्‌वास न छोड़, न छोड़; और न विरह-व्यथामें रो-रोकर दिशाओंको व्याकुल कर,

आकाशमें रङ्गीले बादल कबड्डी खेल रहे हैं, और समुद्रमें ज्वार उमड़ रहा है,—

तेरे हृदयके किवाड़ बन्द कर ले,

आफ़ताब डूब रहा है !

१०५

उसकी पार्थिव-अस्थियोंपर पोस्तके लाल फूल बरसाओ;

और उसके कफ़नपर श्वेत !

समुद्र उसके विरहमें करुण क्रन्दन कर रहा है;

हवा उसके वियोगमें उच्छ्वास छोड़ रही है, और बुलबुल मरसिया गा-गाकर सुननेवालेके दिलको ठेस पहुँचा रही है;

सुख दुःख उसने देख लिये—

उसके कफ़नपर श्वेत फूल बरसाओ, और उसके मृत-पिण्डपर लाल पोस्त !

किसी सूने शांत स्थलमें,

उसके क्लान्त शरीरको, मिट्टीकी कोमल शय्यापर धीरेसे सुला

उसके अर्ध-खुले नयनोंको आहिस्तासे मूँद दो;

शून्य गगनकी शांति उसे मिले;

वह तो प्रकाश और अंधकार, शोक और आनंदके परे पहुँच गई;

न अब उसे शुहरतकी जुस्तजू है, न बदनामीका भय;

बेहतर है यही कि सब्ज़ेके घूँघटमें वह अपना सौन्दर्य छिपा ले,—

क्यों कि, उसके लम्बे खामोशपर लिखी है मेरे .ज़ुल्मकी दानवी कहानी;

या इलाही ! उसकी ख़ाक़नशीनीपर अमृत बरसा !

ऐ क़ब्र तक साथ देनेवालो !

उसके कफ़नपर श्वेत फ़ूल बरसाओ और उसके पार्थिव शवपर गुले लाला और लाल पोस्त !

१०८

दीवाने मन !

निद्रित विस्मृतिके उच्छ्वासोंको एक ही उपहासमें उगल दे,—

फिर गूढ़ रहस्यमयी उमंगका अतुल धनी बन,—

तेरा पागलपन अमर होगा !

१०७

मेरे गद्य-गीतोंके राजहंसो,

खूनी बर्फ़का तूफ़ान इस भयंकर शीतमें मेरे मानसरोवरको क्षुब्ध करे,

उसके पूर्व ही यहाँसे उड़ चलो ! उस सुदूर नील गगनमें विचरना जहाँ न कोई वनस्थली है, और न कल्पनाका विशाल नंदन-कानन;

उड़ते उड़ते अपनी यात्रामें उन ऊँचे गिरि-शिखरोंका अलौकिक सौन्दर्य निरखना न भूलना जहाँ सदैव चाँदी बिछी रहती है, और,—

जिनके आलिङ्गन-मात्रसे चन्द्रिका अपने पूर्ण यौवनको प्राप्त करती है !

मार्गमें तुम्हें उन विहंगम-बालाओंकी सङ्गीत-लहरी सुनाई पड़ेगी, जो अपने प्रेमियोंसे चोंचें मिलाकर स्वर्गीय राग अलापती हैं, और जिसको सुननेके लिये चराचर लालायित रहता है;

तुम उस स्वर्णिम-द्वीपमें जाकर ही विश्राम लेना जहाँ सदैव वसंत विराजता है,

और जिसका अधिपति मेरी स्वप्न-कल्पनाका स्वामी भी है, और जिसका दिव्य-प्रेम मेरे रोम-रोममें बस रहा है;

उससे कहना कि प्रेमके चिरन्तन ध्येयको जो शुचि समर्पण है, खूब समझनेवाली तुम्हारी सरल पुजारिन तुम्हारे विरहमें रात-दिन तड़प तड़प कर किसी तरह काल-क्षेप कर रही है,—

उसकी शीघ्र सुधि ले, विजय-वर-माल पहनाओ !

और अपने प्रेम-राज्यकी रानी बनाओ !

जाओ,—तुम्हारा प्रवास सुखद हो, तुम्हारी लम्बी यात्रा शुभ हो, और कालरूपी बाज़ तुमसे कन्नी काटे—

—यही मेरा आशीर्वाद है, यही मेरी मंगल-कामना है !

समाप्त